हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—२३९

भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र का जीवन चरित्र

लेखक

राधाकृष्ण दास
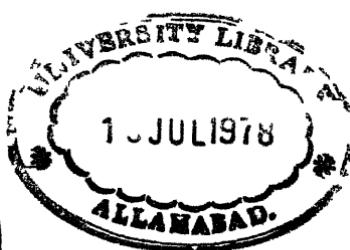
उत्तर प्रदेश शासन

'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन',

महात्मा गाधी मार्ग, लखनऊ २२६००१

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जीवन चरित्र

नवीन संस्करण

जनवरी, १९७६

मूल्य

चार रुपये

प्रकाशक हिंदी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ

मुद्रक शंभुनाथ वाजपेयी, नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक की ओर से

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिंदी के उन्नयन और प्रसार के लिए जो कुछ किया है, उसके लिए हमारा साहित्य-समाज सदैव कृतज्ञ रहेगा। कुछ दिन पूव विगत १० सितम्बर को हमने उस साहित्यकार के १२५वें जन्मदिन का महोत्सव सम्पन्न किया है। उस अवसर पर समिति की ओर से घोषणा की गयी थी कि बाबू शिवनन्दन सहाय तथा उनके परिवार के अभिन्न श्री राधाकृष्ण दास द्वारा लिखी गयी जीवनिया हम हिंदी-जगत् को पुन उपलब्ध करायेंगे।

ये दोनो ही ग्रन्थ आज से ७–८ दशक पूव प्रकाशित हुए और दोनो का उनके साहित्य तथा उनकी जीवनी की दृष्टि से महत्व है। इन दोनो ही लेखको ने उस व्यक्ति के गुणावगुणो तथा उनके साहित्य को समर्पित जीवन की साधना को अभिव्यक्ति देने के निमित्त इनकी रचना की है।

बाबू शिवनन्दन सहाय जी की कृति हम आफसेट पद्धति से मुद्रित कर हिंदी जगत् को पिछले वष ही भेंट कर चुके हैं। उसी क्रम मे यह ग्रन्थ भी है। हमने इसे भी अविकल रूप मे प्रकाशित करने की चेष्टा की है, ताकि पाठको को लेखक की शैली और भाषा का भी परिचय मिले। समिति के अध्यक्ष, आदरणीय नागर जी ने ग्रन्थ की प्रस्तावना के रूप मे इस सन्दर्भ मे जो निवेदन किया है, वही हमारा वक्तव्य है। भारतेन्दु के प्रति यही सच्ची श्रद्धाजलि होगी कि हम उनके जीवन की यथार्थता को हार्दिकता के साथ अध्ययन करे और अनुभव करे कि किसी भी कार्य के लिए आत्मार्पण जरूरी है। भारतेन्दु जी के जीवन का यही सन्देश है।

हमारे इस आयोजन को सम्बल मिला है, समिति के शुभचिन्तको और साहित्य के उन्नायको से। हम उनके कृतज्ञ है। हम अशोक जी तथा डॉक्टर धीरेन्द्रनाथ सिंह के प्रति भी अनुगृहीत हैं, जिन्होने इसके प्रकाशन मे रुचि दर्शित की। डॉक्टर धीरेन्द्रनाथ सिंह ने अपना ही काय समझकर

न केवल इस ग्रन्थ के लिए, बल्कि पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ बाबू शिवनन्दन सहाय द्वारा लिखित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी के प्रकाशन मे उल्लेखनीय सहयोग किया है। इस ग्रन्थ के अन्त मे उन्ही के यत्न से सन १८८५ मे मुद्रित 'चद्रास्त' के भी पृष्ठ जोड दिये गये ह। इससे ग्रन्थ मे पूणता आ गयी है और बाबू हरिश्चन्द्र की एक और सक्षिप्त जीवनी, उनकी लोकप्रियता का सकेत करती हे।

हमे विश्वास हे, भारतेन्दु जी की अमर साहित्य-साधना के प्रति श्रद्धाजलि स्वरूप समिति द्वारा प्रकाशित ये ग्रन्थ न केवल लोकप्रिय, अपितु प्रेरक भी सिद्ध होगे।

हिन्दी भवन,
लखनऊ,
२२ जनवरी, १९७६

काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
सचिव, हिन्दी समिति
उत्तर प्रदेश शासन

आइये, उनका ऋण-भार उतारें !

अनेक आचार्यो का यह मत है कि साहित्य को समय की लक्ष्मणलीक से नही बाधा जा सकता। साहित्य मानवीय तत्वो पर आधारित है और वे शाश्वत होते है। उनके मतानुसार वक्त की पुकार से उपजने वाला साहित्य वक्त के साथ ही समाप्त भी हो जाता है। आचायगण तक देते है कि राष्ट्रीय आन्दोलन से सीधे प्रभावित होने वाला सारा साहित्य आज बेभाव हो चुका है जबकि उस आन्दोलन से अपरोक्ष रूप से प्रभावित और प्रेरित छायावादी काव्य साहित्य आज भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

आचार्यों के इस मत को ध्यान मे रखते हुए भी मै इस बात को नजरअन्दाज नही कर पाता कि हर देश-काल अपने राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक और सामाजिक प्रभावो से भी कही पर गहरी अन्तरगता के साथ जुडा रहता है और वह निश्चित रूप से आचार्यों द्वारा बखाने गये 'शाश्वत' और 'मानवीय तत्वो' से भी परोक्ष किंवा अपरोक्ष रूप से बँधा होता है। मै यह तो अनुभव करता हूँ कि साहित्य मे स्थायी मूल्यमान काल की वासनाओ से अधिकतर अप्रभावित रहते है लेकिन काल की इच्छाओ से वे कदापि अविच्छिन्न नही हो सकते। अब भी कभी-कभी ऐसे विचार पढने-सुनने मे आते हैं कि कला को उपयोगिता की दृष्टि से देखना गलत है। कला केवल विशुद्ध सौन्दय की वस्तु है। लेकिन मुझे लगता है कि कला सदा विरोधाभासो से उमगती है। कभी उसमे समय के द्वद्व की छाया झलकती है, जैसे छायावादी काव्यधारा मे, और कभी ठेठ द्वद्व ही कला का रूप धारण कर लेता है, जैसे प्रेमचद कृत 'गोदान' या 'रगभूमि' मे। व्यक्ति के निजी और

सामाजिक तथा इसी तरह किसी देश-समाज के निजी और सार्वभौमिक व्यक्तित्वो मे जो विरोधाभास हमे झलकता है, वह प्राय. उसके भीतर टकराते हुए वर्ग-सघर्ष के कारण ही होता है। यदि समाज पर जड पुरोहितवाद और मुर्दा कर्मकाण्ड का बेपनाह बोझ न पडा होता तो किसी औद्दालक आरुणि के मन मे यह सत्य भी प्रकट न हुआ होता कि आग मे व्यर्थ ही घी, जौ, धान आदि फूक कर ब्राह्मणो को मोटी-मोटी दक्षिणाएँ देने के काम का नाम यज्ञ नही है। मोक्ष के लिए विचार-यज्ञ आवश्यक है। बुद्ध और महावीर के समय मे एक ओर जहाँ इने गिने जनपदीय नगरो मे लक्ष्मी का समस्त वैभव-विलास अपने भीतर समेटकर नागर सभ्यता अपनी 'अति' की परेशानियो से उलझी थी, वही दूसरी ओर अनेक मानव जातियाँ जगलो मे पिछडा-दर-पिछडा जीवन बिताने के लिए बाध्य थी। इसलिए यह आकस्मिक नही था कि बुद्ध और महावीर जसे धनकुबेरो के राजदुलारे बेटे अनुपम त्याग का आदर्श उपस्थित करे। इसान के दर्द ने ही उनके दिलो मे पैठ कर दुनिया को सदा नयी दृष्टि दी हे। तानाशाह सामन्तो के क्षणिक सुख की शिकार सरल ग्राम्यबालाओ की करुणा ने ही कविकुलगुरु कालिदास के अन्तर मे उपज कर उनसे 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' जैसे अनूठे नाटक की रचना करायी। कबीर तुलसी की रामरूपी आस्था अपने देश काल के मानसिक बिखराव और घोर अनास्था से ही उपजी थी। भारतेन्दु रचित "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल", हमारी चेतना मे नक्षत्रवत् आज तक चमकनेवाला मत्र, अपने देश, समाज और काल के मनोद्वन्द्व से ही उदय हुआ था। सक्रान्ति काल स्वय ही अपने भले-बुरे भाग्य के अनुसार अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए एक या कुछ व्यक्ति चुन लेता है।

भारतेन्दु का समस्त अतर्बाह्य व्यक्तित्व ही ऐसे देश काल मे निखर सकता था जो एक कठिन सक्रान्ति से गुजर कर नयी चेतना के तट से आ लगा हो। नये पूँजीवादी साम्राज्यवाद से अनु-

शासित अच्छाइयो और बुराइयो की सही छाप एक ऐसे ही कला-कार के हृदय पर पड सकती थी, जो स्वय महाजनी सभ्यता मे पला हो। काशी नरेश की शुभचिन्तना पर कोई कवि कलाकार ही यह कह सकता था कि **जिस दौलत ने मेरे बाप-दादो को खाया है उसे मैं खा डालूँगा**। यह विद्रोही वाक्य उसी हृदय से फूट सकता है जो अपने समाज की विसगतियो से घुट रहा हो और उसे नयी व्यवस्था देने के लिए आग्रहशील हो।

हरिश्चन्द्र जी ने अपने इतिहास-प्रसिद्ध वृद्ध प्रपितामह सेठ अमीचन्द और ईस्ट इडिया कम्पनी का सारा दुखद काण्ड अपने घरवालो से अवश्य सुना होगा। उन्होंने अपने धनकुबेर कवि पिता गोपालचन्द्र जी के दरबार मे भारत की दिनोदिन आर्थिक अवनति के सबध मे वे सब बाते भी अवश्य सुनी होगी, जो ईस्ट इडिया कम्पनी के द्वारा भेजी गई एक प्रश्नावली के उत्तर मे उनके पितामह बाबू हर्षचन्द्र जी ने लिख भेजी थी। सत्तावनी गदर इनकी सात वर्ष की अवस्था मे आया था। उन दिनो सैकडो नई-पुरानी बातो के साथ-साथ बालक हरिश्चन्द्र को अग्रेजी नीतियो और चालबाजियो का जो आभास बडो की बातो से मिला होगा, वह उन पर स्थायी छाप छोड गया। उस छाप ने एक ओर जहाँ उन्हे स्वदेशी आन्दोलन का आदि नेता बनाया वही दूसरी ओर धन और महाजनी सभ्यता से उन्हें वितृष्णा भी हो गयी। वैष्णवी मानवतावादी सस्कार और भक्त हृदय की भावुकता भी इन्हें अपने वशपरपरागत पेशे के प्रति एक ओर जहा उदासीन बना रही थी वही दूसरी ओर उसी पेशे से अर्जित खानदानी धनराशि का लोकोपकारी कार्यों मे अधिकाधिक उपयोग करने की उनकी इच्छा और आग्रह को भी बढावा देती थी। जब इससे धन बचता तो फिर उसे अपनी मनमानियो मे फूकते थे। महाजन के वशधर को अपनी कमाई से अधिक अपने देश की आर्थिक कमाई की चिन्ता थी। वे अपने सोते हुए जन-समाज मे उसी की चेतना जगाने के लिए अपने

पुरखो का धन फूक रहे थे। पैसे के महत्व को पूणतया जानते हुए भी उन्हे मानो पैसे से चिढ थी।

भारतेन्दु की अग्रेज भक्ति या राजभक्ति के सबध मे अक्सर कुछ बाते उठायी गयी है। जहा तक मै समभता हूँ, भारतेन्दु के मन मे किसी राजाविहीन समाज की कल्पना तक नही आई होगी। यद्यपि भारत 'निज स्वत्व गहे' की कामना उनके मन मे अवश्य उदय हो चुकी थी, फिर भी राजभक्ति का सस्कार उनके मन मे दृढ था। जिस जाति का शासन था उसके प्रति उनके मन की प्रतिक्रियाये दो प्रकार से प्रकट हुई है—

भीतर भीतर सब रस चूसें
हँसि हँसि के तन-मन-धन मूसें
जाहिर बातन मे अति तेज
क्यो सखि साजन, नहि अग्रेज।

दूसरी ओर अग्रेज जाति की औद्योगिकता, अनुशासन, अध्ययनशीलता, नारी-स्वाधीनता आदि अनेक गुणो का आदर करना भी उनका स्वभाव था। अग्रेज-शासन की आर्थिक, शैक्षिक आदि अनेक नीतिया के विरोध करने के बावजूद वे अपने राष्ट्र के हित मे अग्रेजी शासन के समथक भी थे, विरोधी नही थे। अपने देशवासियो को चेताने के लिये वह यह भी कह सकते थे—

तब लौं बहु सोये वत्स तुम जागे नहि कोऊ जतन
अब तौ रानी बिक्टोरिया जागहु सुत भय छाँडि मन।

भारतेन्दु के बलिया के भाषण मे भी यही बात है कि अग्रेजो के शासनकाल मे भारतवासी अपनी उन्नति कर सकते है। अग्रेजो के समय मे पिछली कई शताब्दियो के बाद शान्ति और व्यवस्था के सुदिन आए थे। उस समय का लाभ उठाने हुए भारतेन्दु अपने देश, समाज को सशक्त बनाना चाहते थे। उस समय की मनोभूमि दर्शाते हुए गुरदेव रवीद्रनाथ भी यह कहते है कि—"तखन आमरा

स्वजातिर स्वाधीनतार साधना आरम्भ करेछिलुम, किंतु अतरे-अतरे छिल इग्रेज जातिर औदार्येर प्रति विश्वास।" भारतेन्दु को अपने तत्कालीन समाज से कहीं पर बडी गहरी चिढ और शिकायतें भी थी। अपने देश के पतनोन्मुखी निष्क्रिय रूढिग्रस्त समाज से उन्हें बेहद चिढ थी, वे उसे बदलने के लिये व्यग्र रहते थे।

उन्हें उम्र देने में नियति ने पूरी कजूसी से काम लिया था। काम के लिए मुश्किल से १६—१७ वर्ष ही उन्हें मिल पाये होगे। मगर क्या दीवानी तडप थी उनमे कि आप तो बहुत कुछ कर ही गये, सम्पूर्ण हिन्दी-भाषी विशाल क्षेत्र मे अपने समानधर्मा लोगो से भी काम करा लिया। सच पूछा जाय तो भारतेन्दु स्वय ही हिन्दी का प्रथम मच थे। भारतेन्दु ने अपने समाज को समय की धारा मे बेबस बहने के बजाय तैर कर पार करना सिखलाया। डा० रामविलास शर्मा ने अपने किसी लेख या पुस्तक मे एक बडे मार्के की बात लिखी है। वह कहते है कि राजभाषा होने के कारण यो तो फारसी ने भारत की सभी भाषाओ को किसी न-किसी हद तक प्रभावित किया पर खडी बोली जब फारसी शब्दावली का सिगार सज कर साहित्य के क्षेत्र मे आई तो केवल कुछ नगरो और उँचे वर्ग के लोगो को ही आकर्षित कर सकी, किन्तु विशाल हिंदी भाषी क्षेत्र की अनेक बोलियो के बावजूद जो साहित्यिक परम्परा सबल वर्तमान थी वह जायसी, कबीर, तुलसी, रसखान, रहीम, देव, मतिराम, बिहारी आदि की थी। फारसी मिश्रित खडी बोली मे यह परपरा अँटती न थी। इसलिए भारतेन्दु ने हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए एक आन्दोलन आरम्भ किया, सभाएँ की, प्रेस मे लिखा लिखाया, पटीशन भेजे परन्तु शिक्षा विभाग के निदेशक कैम्पसन साहब पर राजा शिवप्रसाद का जादू चढा हुआ था। राजा साहब को "**कल के छोकरे**" हरिश्चन्द्र की लोकप्रियता और बढते प्रभाव से चिढ थी। हिन्दी के पेटीशन नामजूर हुए। राधाकृष्णदास जी के अनुसार, बाबू साहब का हृदय 'हाकिमी' अन्याय से क्रुद्ध गया था।

दूसरा एक कारण इनके विरोध का यह हुआ कि राजासाहब ने फारसी आदि मिश्रित खिचड़ी हिन्दी की सृष्टि करके उसे चलाना चाहा। यह भारतेन्दु के ही जौहर थे जो हिन्दी को **"नयी चाल मे ढाल"** कर केवल एक पुरानी सशक्त साहित्य-परपरा को ही जीवित नही रखा वरन् खडी बोली को भारत की अन्य भाषाओ के सन्निकट भी ला दिया। सच पूछा जाय तो हिन्दी तो भारतेन्दु का जीवन्त स्मारक है। सही भाषा-नीति अपनाने के कारण ही करोडो हिन्दी-भाषियो ने ब्रिटिश सरकार के बनाये हुए **'सितारे-हिंद'** के मुकाबले मे हरिश्चन्द्र को **'भारतेन्दु'** मान कर प्रेम और आदर सहित अपने दिलो मे जगह दी, और आज भी दे रहे है। यहा पर यह बात भी ध्यान देने लायक है कि हिंदी के इस युगानुकूल और उचित आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए उन्होने उसे साम्प्रदायिक रुख कदापि न अपनाने दिया। वह उर्दू के दुश्मन न थे, उर्दू मे अखबार निकालने का विचार भी उनके मन मे था और उसकी घोषणा भी वे कर चुके थे। अपने घर मे कविगोष्ठियो के अलावा वे मुशायरे भी कराते थे। 'रसा' उपनाम से गज़लें भी कहते थे। भाषा के सबध मे भारतेन्दु ने सही नीति निर्धारित करके न केवल अपने समय मे बल्कि भविष्य के लिए भी हिन्दी को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान कर दी।

हिन्दी भाषा को आधुनिक रूप देने मे ही नही वरन हिंदी साहित्य को भी आधुनिक काल की आवश्यकताओ के अनुकूल ढालने मे भी उनके प्रयत्न चिरस्मरणीय रहेंगे। उन्होने नाटक, कविता, निबन्ध आदि विधाओ को तो बढावा दिया ही, उपन्यास लेखन की दिशा मे भी गति दी, **"कुछ आप बीती, कुछ जग बीती"** इस बात का प्रमाण है। काव्यशास्त्र के अतिरिक्त उन्हें इतिहास, पुरातत्व और सामाजिक समस्याओ के प्रति भी गहरी रुचि थी। उनकी साहित्य-रचना कोरी सुन्दरता के लिए नही, बल्कि पूरे समाज को सुन्दर बनाने के लिए होती थी।

'कविवचन सुधा' के सिद्धान्त वाक्य या 'मोटो' के लिए उन्होंने इस छन्द की रचना की थी—

खल गगन सो सज्जन दुखी
मति होंहि, हरिपद मति रहै।
उपधम छूटै, स्वत्व निज
भारत गहै, कर दुख बहै ॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर
सम होंहि, जग आनँद लहै।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन
की अमृतबानी सब कहैं ॥

बाबू राधाकृष्णदास जी ने ठीक ही लिखा है कि—"यद्यपि इन बातो का कहना कुछ कठिन प्रतीत नही होता है परन्तु उस अध-परम्परा के समय मे इनका प्रकाश्य रूप मे इस प्रकार कहना सहज न था। नव्य शिक्षित समाज को "हरिपद मति रहै" कहना जैसा अरुचिकर था, उससे बढ कर लकीर के फकीरो को "उपधम छूटै" कहना क्रोधोन्मत्त करना था। जैसा ही अंग्रेज हाकिमो को "स्वत्व निज भारत गहै, कर (टैक्स) दुख बहै" कहना कणकटु था, उससे अधिक "नारि नर सम होंहि" कहना हिन्दुस्तानी भद्र समाज को चिढाना था। परन्तु वीर हरिश्चन्द्र ने जो जी मे ठाना उसे कह ही डाला और जो कहा उसे आजन्म निभाया भी।" यह खरे साहित्यिक की पहचान है।

मेरा अनुभव है कि कृती-साहित्यिक आम तौर से मन मे किसी बिंब की झलक पाता है और उसी बिंब से उसकी सवेदनाएँ और विचार जागते है। ये सवेदनाएँ जैसे-जैसे तीव्र और विचार जैसे-जैसे गहरे होते है, वैसे-वैसे मनोबिंब भी अधिकाधिक प्रखर होकर दृश्यमान होने लगते है। यह बिंब वस्तुत उन सभी सवेदनाओ का सवहन करते है जो रचनाकार के देश काल और

वर्ग को प्रभावित करती है। सदा ही किसी न किसी प्रकार के अभावो की चुनौतियो से घिरा रहने वाला कवि-कलाकार इन्ही मनोबिंबो के सहारे आगे बढने का हौसला पाता है। वह अभावो को अपने अनुभूत भावो से भरता है। वह जब जड स्थिति की कुरूपता को स्वस्थ प्रगति की सुन्दरता प्रदान करता है, उसके आगे उक्तियो और उपमानो आदि की सुन्दरता बडी होते हुए भी छोटी बन जाती है। सुन्दर आभूषणो की सुन्दरता कुरूप काया पर कभी नही खिलती, उसकी शोभा का निखार भी सुन्दर मुखडे वाली सुडौल काया पर ही आ सकता है। भारतेन्दु अपने समाज को सुन्दर और स्वस्थ बनाने के लिए उतावले थे। भक्त की निशानी यही है कि वह 'सियाराम मय सब जग जान' कर तन-मन-धन से उसकी सेवा करे। इस दृष्टि से भारतेन्दु खरे वैष्णव भक्त थे। साहित्य-साधना ही उनकी भक्ति-साधना थी। स्कूल खोलना, रगमच आन्दोलन को सक्रिय बढावा देना, धर्मसमाज, तदीयसमाज आदि सस्थाओ की स्थापना करना आदि सारे काम उनकी साहित्य-साधना या 'हरिपद मति रहै' के लिए ही समर्पित थे। यही कारण था कि कुल १६–१७ वर्षो का कार्यकाल पाकर भी वे युग-प्रवर्तन करने के सर्वथा योग्य सिद्ध हुए। बाबू राधाकृष्णदास जी ने उनकी लेखन शक्ति के विषय मे लिखा है कि डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र इन्हे 'लिखने की मशीन' कहा करते थे। लेखन शक्ति इतनी आश्चर्य-जनक थी, कलम कभी न रुकती। बातें होती जाती हैं, कलम चला जाता है। कलम, दावात और कागजो का बस्ता सदा उनके साथ चलता। दिन भर लिखने पर भी सन्तोष न था, रात को भी उठ कर लिखा करते। यह तडप और उतावलापन किसी दीवाने मे ही हो सकता है और दीवाने ही युगप्रवर्तक होते हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि सम्पूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र के प्रबुद्ध जनो को भाषा, सस्कृति और समाज सेवा के कार्यो में लगा कर उन्हे एक मिशनरी प्रेम के कच्चे धागे मे बाध कर,

हिन्दी भाषी क्षेत्र को बाँग्ला, मराठी, गुजराती, पजाबी आदि अन्य भारतीय भाषाओ के समानधर्मा विचारको के साथ मिला कर "भारत स्वत्व निज कर गहे" की दीर्घकालीन योजना के लिए भारतेन्दु ने राष्टोत्थान का एक व्यापक स्वप्न साकार करने का प्रयत्न किया था। हिन्दी भाषी जन **'जनम के रिनिया'** भारतेन्दु का यह ऋण भार जितना उतारे उतना ही कम है। यह फकीर की कमली की तरह है—जितनी वह भीगेगी उतनी ही भारी होती जायेगी और उतना ही हमारा साहित्य और समाज सुन्दर से सुन्दरतर होता चला जायेगा। यदि सही सोद्देश्यता हो तो युग-धर्मी साहित्य ही शाश्वतधर्मी भी हो जाता है। वस्तुत अतरग मे दोनो **'कहियत भिन्न न भिन्न'** ही है।

भारतेन्दु के सपादशताब्दी महोत्सव के इस वष मे उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति ने बाबू राधाकृष्णदास लिखित प्रस्तुत जीवनी के अतिरिक्त बाबू शिवनन्दन सहाय लिखित **'हरिश्चन्द्र'** पुस्तक को भी पुनप्रकाशित किया है। इनसे अधिक प्रामाणिक जीवनियाँ कदाचित् आज भी नही लिखी जा सकती, क्योकि भारतेन्दु से सबधित काफी सामग्री दुर्भाग्यवश लुप्त हो चुकी है। शोधकर्ताओ के लिए इन अप्राप्य पुस्तको के पुनप्रकाशन की बडी आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त समिति भारतेन्दु के सभी असकलित निबधो का एक सग्रह भी शीघ्र प्रकाशित करेगी। आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक के प्रति हमारी यह विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित है।

हिन्दी भवन,
लखनऊ,
१६ १ १९७६

अमृतलाल नागर
अध्यक्ष, हिंदी समिति

इस ग्रन्थ में

ग्रन्थ के नायक

(कलाकार श्री बैजनाथ वर्मा)

ग्रन्थ के लेखक

(कलाकार श्री बैजनाथ वर्मा

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
का जीवन चरित्र

लेखक का वक्तव्य

"खड्गविलास" यन्त्रालय की ढील से उकताए हुए मित्रो के आग्रह से मैने पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चद्र जी के जीवनचरित्र की जो बाते मुझे याद आई, उन्हे सरस्वती पत्रिका द्वारा चार वर्ष हुए प्रकाशित किया था, तब से प्राय लोगो का आग्रह उसे पुस्तकाकार छापने का होता रहा परतु अब तक उसका अवसर न आया। इधर गत कार्तिक मास मे "दिल्ली दरबार चरितावली"[1] के लेखक जगदीशपुर जिला शाहाबाद-निवासी बाबू हरिहर प्रसाद जी काशी आए और उन्होने अत्यत ही आग्रह करके अपने सामने ही छपने का प्रबध कराया अतएव इसके छपने के मल कारण उक्त महाशय ही है, इसलिये मै उन्हे धन्यवाद देता हूँ।

इस छोटे ग्रथ मे जहाँ तक सामग्री मुझे मिली, मैंने उसका दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। सभव है कि बहुतेरी आवश्यक बाते इसमे छूट गई हो, क्योकि मेरे पास जो कुछ सामग्री थी उसमे से अधिकाश "खडगविलास" यन्त्रालय के स्वामी स्वर्गवासी बाबू रामदीनसिह जी जीवनी प्रकाश करने की इच्छा से ले गए थे। "सरस्वती" मे जो जीवनी छपी थी उसके पीछे और जिन बातो का पता लगा वे इसमे बढा दी गई है। आशा है कि इससे हिंदी और पूज्य भारतेंदु के प्रेमियो को कुछ आनद प्राप्त होगा।

---

१ इस ग्रथ मे भारत सम्राट महाराजाधिराज सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक महोत्सव के उपलक्ष मे, जो दिल्ली मे दर्बार हुआ था, उसका वृत्त दिल्ली के इतिहास सहित सरल हिंदी भाषा मे वर्णित है। उक्त ग्रथ बाबू साहब के पास बाब गुलाबचद्र जी की कोठी, दौलतगज, छपरा इस पते से मिलता है।

पूज्य भारतेंदु जी की जीवनी लिखना मुझे उचित न था, इसमे आत्मश्लाघा का दोषी बनना पडता है, परन्तु यह सोचकर कि यदि और लोगो की भाँति आलस्य मे, वे बाते जो मुझे विदित है, लिखने से रह गई और मेरा शरीर भी न रहा तो उनका पता लगना भी दुर्घट हो जायगा और यह लालसा मेरी मन की मन ही में रह जायगी इसलिये मैने यह धृष्टता की है। आशा है कि सज्जन क्षमा करेगे।

हर्ष की बात है कि हिंदीहितैषी बाबू रामदीनसिह जी के योग्य पुत्र बाबू रामरणविजय सिह का ध्यान अपने पिता की इस इच्छा को पूरा करने की ओर गया है । आशा है कि वे अपने पिता की सगृहीत सामग्रियो से इस जीवनी की पूर्ति करेंगे ।

"भारतमित्र" सपादक सुहृद्वर बाबू बालमुकुद गुप्त भी एक जीवनी लिखनेवाले है। यदि उक्त दोनो जीवनियो मे कुछ भी सहायता मेरी लिखी इस जीवनी से मिलेगी तो मै अपने परिश्रम को सफल समझूँगा ।

(स० १९६१) **राधाकृष्ण दास**

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र

पिता और पूर्व पुरुष

परमेश्वर नास्तिको का मुह बन्द करने और अपना अस्तित्व प्रमाणित करने ही के लिये कभी कभी पृथ्वी पर ऐसे लोगो को जन्माता है जिनकी अद्भुत प्रतिभा देखकर लोग आश्चय मे आ जाते है। हमारे चरित्रनायक भी वैसेही एक पुरुषरत्न थे कि जिनके चरित्र मे ईश्वर की ईश्वरता का साक्षात प्रमाण मिलता है। ऐसे लोगो के जीवनचरित्र को पढने से लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते है, क्योकि उनका चरित्र लोगो को एक अच्छा रास्ता दिखलाता और ससार मे यश कमाने का अच्छा उपदेश देता है।

जगत् प्रसिद्ध कविश्रेष्ठ गिरिधरदास, प्रसिद्ध नाम बाबू गोपालचन्द्र, का जन्म काशी मे मिती पौष कृष्ण १५ स० १८९० को हुआ था और मृत्यु मिती वैशाख सु० ७ स० १९१७ को। उन्होने इस २६ वर्ष ४ महीने और ७ दिन की ऐसी छोटी अवस्था मे कितने बडे काम किए हैं यह देख कर आश्चय होता है। हिन्दुस्तान मे जिस अवस्था मे धनवानो के लडको को पूरी तरह पर बात करने का भी ज्ञान नहीं होता और जिस भयानक अवस्था के वणन मे उचित रूप से कहा गया है कि--

> "यौवन धन सम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता।
> एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥"

उस अवस्था मे इस प्रान्त के प्रसिद्ध सेठ हर्षचद्र के एकमात्र पुत्र गोपालचन्द्र

ने बचपन मे ही पितृहीन होकर भी विद्वत्ता और सच्चरित्रता का ऐसा उदाहरण छोडा है कि जिसे देखकर ईश्वर की महिमा स्मरण आती है। इसके पहिले कि हम इनका कुछ चरित्र लिखें, इनके सुप्रसिद्ध वश का बहुत ही सक्षेप से वर्णन कर देना उचित समझते हैं, जिसमे हमारे पाठको को इनका और इनके पुत्र हिन्दी-प्रेमियो के एकमात्र प्रेमाराध्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पूरा परिचय मिल जाय।

भारतेन्दु जी स्वरचित "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" मे निज वश परम्परा यो वर्णन करते हैं —

"बैश्यअग्र–कुल मैं प्रगट बालकृष्ण कुल पाल।
ता सुत गिरिधरचरनरत, वर गिरधारीलाल ॥ १ ॥
अमीचद तिनके तनय, फतेचद ता नद।
हरखचद जिन के भए, निज कुल सागर चद ॥ २ ॥
श्री गिरिधर गुरु सेइके, घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीव सब, हरि पद भक्ति दृढाइ ॥ ३ ॥
तिनके सुत गोपाल शसि, प्रगटित गिरिधरदास।
कठिन करम गति मेटि जिन, कीनो भक्ति प्रकास ॥ ४ ॥
मेटि देव देवी सकल, छोडि कठिन कुल रीति।
थाप्यो गृह मै प्रेम जिन, प्रगटि कृष्ण पद प्रीति ॥ ५ ॥
पारवती की कूख सौ, तिन सो प्रगट अमन्द।
गोकुलचन्दाग्रज भयो, भक्त दास हरिचन्द ॥ ६ ॥"

ख वंश वृक्ष।
रायबालकृष्ण
दलपतराय
खिरोधर लाल
लक्ष्मीराम
गिरिधारी लाल
सेठ अमीचन्द
चन्द्र विलास
फकीरचन्द
हरिबिलास
सूरत सिंह
रूपचन्द
अनूपचन्द
शोभाचन्द
राजा गोविन्दचन्द
राय रतनचन्द बहादुर
बाबू रायचन्द
गोपीचन्द
डालचन्द
मोहनचन्द
विष्णुचन्द
नान्हकचन्द
राय हुकुमचन्द
सीतलचन्द
राजा आनन्दचन्द
पूर्णचन्द

बाबू फतहचन्द्र
बाबू हर्षचन्द्र
गङ्गा बीबी
श्रीराधाकृष्ण दास
यमुना बीबी
राय प्रह्लाद दास
बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास
गोविन्दी बीबी
राय गोपीकृष्ण
बाबू गोकुलचन्द्र
बाबू कृष्णचन्द्र
बाबू व्रजचन्द्र
छोटा बच्चा
जीवनचन्द्र
कृष्णावती
सरस्वती
मुकुन्दी बीबी
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
विद्यावती
व्रजरमनदास
रेवती
रमनदास
व्रजजीवन दास
मोहन दास
व्रजभूषण दास
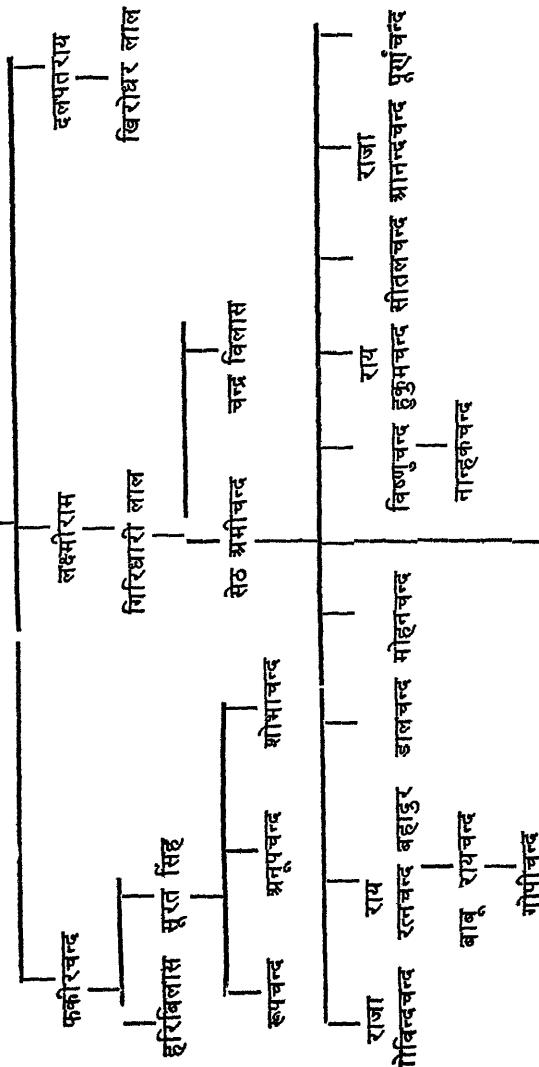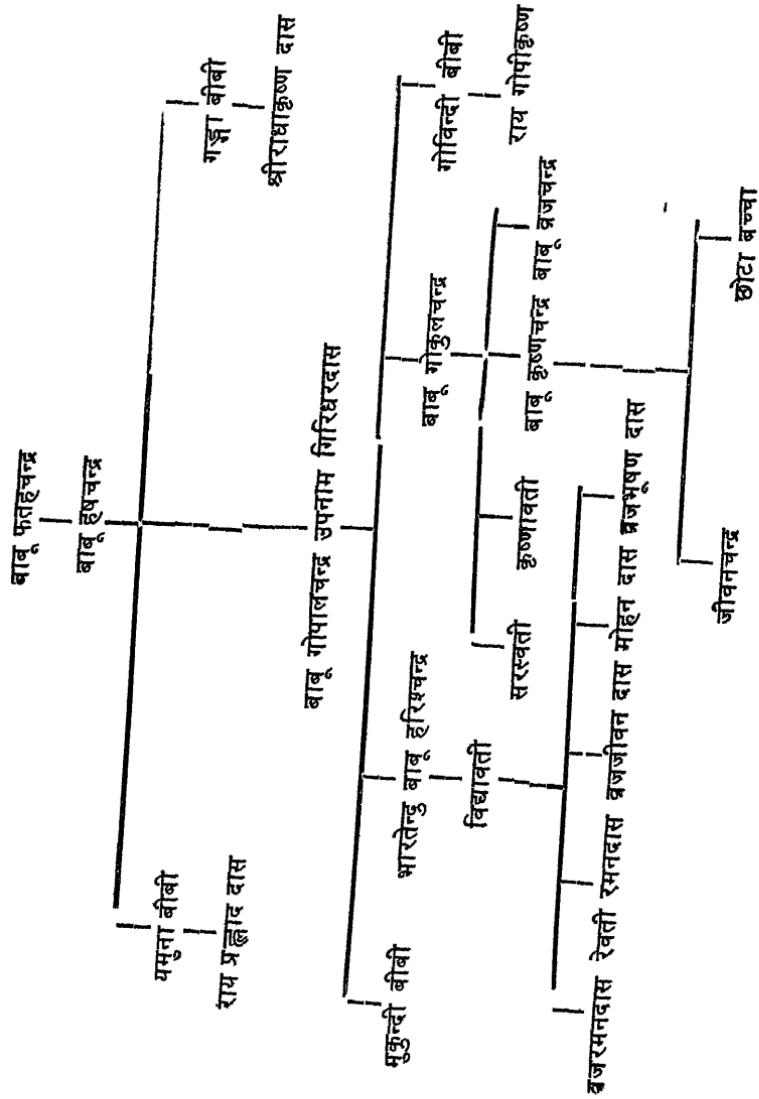
दिल्ली के शाही घराने से इनके प्रतिष्ठित पूर्वजो का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। जब शाहजहाँ का बेटा शाह शुजा सन् १६५० के लगभग विशाल बङ्गाल का सूबेदार होकर आया, तो इनके पूवज भी उसके साथ दिल्ली छोड बङ्गाल मे चले आए, और जैसे जसे मुसलमानी राजधानी बङ्गाल मे बदलती गई वैसे वैसे ये लोग भी अपना प्रवासस्थान परिवतन करते गए। राजमहल और मुर्शिदाबाद में अब तक इनके पूर्वजो के उच्च प्रासादो के अवशिष्ट चिह्न पाए जाते है। इसी विशाल वश के सेठ बालकृष्ण के पौत्र तथा सेठ गिरिधारी लाल के पुत्र सेठ अमीचन्द के समय में इस देश मे अङ्गरेजो का राजत्वकाल प्रारम्भ हुआ। उस समय अङ्गरेजो के सहायको मे से ये भी एक प्रधान सहायक थे। उस समय इनका इतना मान था कि इनके नौ बेटो मे से तीन को "राजा" और एक को "रायबहादुर" की पदवी प्राप्त थी। इन पुत्रो मे से वश केवल बाबू फतहचन्द्र का चला। सेठ अमीचन्द्र का वृत्तान्त इतिहासो मे इस प्रकार से प्रसिद्ध है।

—— ० ——

सेठ अमीचन्द

सेठ अमीचन्द का चार लाख रुपया कलकत्ते मे लुट गया था, और भी बहुत कुछ हानि हो गई थी, परन्तु नव्वाब की ओर से उसकी कुछ भी रक्षा न हुई। निदान यो ही देश को दुखित देख जब लोगो ने अङ्गरेजो की शरण ली तो ये भी उनमे एक प्रधान पुरुष थे। इनसे अङ्गरेजो से यह दृढ प्रतिज्ञा हो गई थी कि सिराजुद्दौला के कोष से जो द्रव्य प्राप्त होगा उसमे से पॉच रुपया सैकडा तुम्हें मिलेगा, और दो प्रतिज्ञापत्र लिखे गए। लाल कागज पर जो लिखा गया उस पर सेठ अमीचन्द को ५) रुपया सैकडा देने को लिखा गया था, परन्तु सफेद कागज पर जो लिखा गया उस पर इनका नाम तक न लिखा। जब हस्ताक्षर होने के हेतु कौंसिल मे ये पत्र उपस्थित हुए तो 'एडमिरल' ने लाल कागज पर हस्ताक्षर करना सर्वथा अस्वीकार किया पर कौंसिल वालो ने उनका हस्ताक्षर बना लिया। बङ्गाल विजय के पश्चात् जब खजाना सहेजा गया तो डेढ़ करोड रुपया निकला। सेठ अमीचन्द ने तीस पैंतीस लाख रुपया मिलने का हिसाब जोड रक्खा था। जब प्रतिज्ञापत्र पढ़ा गया और इनका नाम तक न निकला तो इन्होने उस षडचक्र

से घबडा कर कहा "साहब, वह लाल कागज पर था"। लार्ड क्लाइव ने उत्तर दिया "यह आपको सब्जबाग दिखाने को था। असिल यही सफेद है"। सेठ अमीचन्द इस वाक्य के व्याघात से मूर्छित होकर गिर पडे। लोग उन्हें पालकी मे डालकर घर लाए। इसी प्रबल पीडा से डेड वर्ष के पश्चात् वे परमधाम सिधारे।

राजा शिवप्रसाद लिखते हैं कि "अफसोस है, क्लाइव ऐसे आदमी से ऐसी बात जहूर मे आवे, पर क्या करे, ईश्वर को मञ्जूर है कि आदमी का कोई काम बेऐब न रहे। इस मुल्क मे अग्रेजी अमलदारी की सचाई मे, जो मानो धोबी की धोई हुई सफेद चादर रही है, केवल उसी अमीचन्द ने उसमे एक छोटा सा धब्बा लगा दिया है[1]"।

सेठ अमीचन्द उस समय कलकत्ते के प्रधान महाजनो मे थे। इनका इतिहास बाबू अक्षयकुमार मैत्र ने "सिराजुद्दौला" नामक ग्रथ मे लिखा है, हम उसी को यहाँ उद्धृत करते है।

"हिन्दू वणिको मे उमाचरण का नाम अग्रेजो के इतिहास मे उमीचाँद (अमीचन्द) कह कर प्रसिद्ध है। अग्रेज ऐतिहासिको ने इन्हें लोक समाज मे

---

१ मीर जाफर, अमीचन्द (अमियचन्द्र) ("A man of vast wealth") और खोजा वजीद ये तीन जन थे कि जिन की सहायता से पलासी युद्ध मे अँगरेज विजयी हुए। मीरजाफर (सेनापति) को नवाब बनाने की लालच दी गई और सेठ अमीचन्द को उनका बहुत रुपया, जिसे सिराजुद्दौला ने अन्याय से ले लिया था, युद्ध जीतने और कोष पाने पर देने का वादा किया गया। पीछे रुपया देख क्लाइव लोभ मे आ गया। इसी लोभ ने हेष्टिङ्गस् का नाम चिरस्मरणीय बनाया और इसीसे यह हत्या करा कल्पान्त के लिये उनके और शुभ्र अँगरेजी राज्य के नाम मे कलङ्क लगा दिया। कितने अङ्गरेज इतिहास लेखको ने यद्यपि एक स्वजाति की करनी को बडी बडी बातें बना गोपन रखना चाहा है तथापि कितने न्यायशीलो ने क्लाइव को साफ दोषी ठहराया है। अधम सभी स्थल और सभी समय अधम है। राज सेक्रेटरी T Talboys Wheeler कहते है—But the action of Clive, altho-ugh it did not put a penny in his pocket, has been codemned to this day as a stain upon his character as an English gentleman"

धूर्तता की मूर्ति कह कर प्रसिद्ध करने मे कोई बात उठा नहीं रक्खी है और लार्ड मेकाले ने तो इन्हें "धूर्त बङ्गाली" कहने मे कुछ भी आगा पीछा नहीं किया है, परन्तु ये बङ्गाली नही थे, ये पश्चिम देशीय हिन्दू वणिक थे। केवल बङ्गाल बिहार मे वाणिज्य करने के लिये बङ्गाल में रहते थे। इन्हें केवल बणिक कहने से इनका पूरा परिचय नहीं होता। इनकी नाना विधि सामानो से सुसज्जित राजपुरी, इनका कुसुमदाम सज्जित प्रसिद्ध पुष्पोद्यान (बाग) इनका मणि-माणिक्य से भरा इतिहास मे प्रसिद्ध राज भण्डार, इनका हथियार बन्द सैनिको से घिरा हुआ सुन्दर सिंहद्वार देखकर दूसरे की कौन कहे अग्रेज लोग भी इन्हें एक बडा राजा कह कर मानते थे[1]। सेठो मे जैसे जगतसेठ थे वणिको मे वैसे ही इनका मान्य और पद गौरव नवाब के दर्बार मे था। अग्रेज वणिक जब विपद मे पडते तभी इन के शरणापन्न होते थे, और कई बार केवल इन्हीं की कृपा से इनकी लज्जा रक्षा होने का कुछ कुछ प्रमाण पाया जाता है[2]।

अग्रेज लोग केवल इन्हीं की सहायता पाकर बङ्गाल देश मे अपना वाणिज्य फैला सके थे। इन्हीं की सहायता से गाव गाँव में अग्रेज लोग दादनी देकर रुई और कपडे लेकर बहुत कुछ धन उपाजन करते थे। यह सुविधा न मिलती तो इस अपरिचित विदेश मे अग्रेजो को अपनी शक्ति फैलाने का अवसर मिलता कि नहीं इसमे सन्देह होता है। परन्तु देशी लोगो के साथ जान पहिचान हो जाने पर दैव कोप से अग्रेज लोग इनकी उपेक्षा करने लगें। जिस समय सिराजुद्दौला

---

1 The extent of his habitation, divided into various departments, the number of his servants continually employed on various occupations and a retinue of armed men in constant pay, resembled more the state of a prince than the condition of a merchant —Orme, Vol II 50

2 He had acquired so much influence with the Bengal Government, that the Presidency, in times of difficulty, used to employ his mediation with the Nowab —Orme, Vol II, 50

गद्दी पर बैठे उस समय अग्रेज लोग अमीचन्द का उतना विश्वास नहीं करते थे। इन दोनो के मन मे जो मैल आ गई थी वह धीरे धीरे बहुत ही दृढ़ हो गई।

उस समय इस देश के लोगो की प्रकृति ऐसी सरल थी कि वे अग्रेजो का अध्यवसाय, अकुतोभयता और विद्या बुद्धि देख कर बेखटके विश्वास करके उनके पक्षपाती हो गए थे। इसी से अग्रेजो का रास्ता इस देश मे सुगम हो गया था।

अग्रेजो के उद्धतपने से चिढकर नवाब सिराजुद्दौला ने यद्यपि यह निश्चय कर लिया था कि एक न एक दिन इन को दबाने का उपाय करना होग।, परन्तु एक बेर और दूत भेज कर समझाना उचित जान कर चर देश के राजा रायरामसिंह पर दूत भेजने का भार दिया। अग्रेज लोग नवाब से ऐसे सशङ्कित थे कि इनका कोई मनुष्य कलकत्ता मे घुसने नहीं पाता था, इस लिये रायरामसिंह ने अपने भाई को फेरी वाले के छद्मवेष मे एक डोगी पर बैठा कर कलकत्ता भेजा। वह सेठ अमीचन्द के यहाँ ठहरे और उन्हीं के द्वारा अग्रेजो के पास नवाब का सदेसा लेकर उपस्थित हुए, पर अग्रेजो ने उनकी कुछ बात न मानकर बडे अनादर से निकाल दिया। यद्यपि बाहरी बनाव सेठ अमीचन्द का अग्रेजो से था, परन्तु भीतर से अग्रेज लोग इन से बहुत ही चिढे हुए थे। इस घटना के विषय मे उन लोगो ने लिखा है कि "एक राज दूत आया तो था पर वह नवाब सिराजुद्दौला का भेजा दूत है यह हम लोग कैसे समझ सकते थे? वह एक साधारण फेरी वाले के छद्मवेष मे आकर हम लोगो के सदा के शत्रु अमीचन्द के यहाँ क्यों ठहरा था। अमीचन्द के साथ हम लोगो का झगड़ा था इससे हम लोगो ने समझा था कि अपनी बात बढाने के लिये ही इन्हो ने यह कौशल जाल फैलाया है, इसी लिये राजदूत की उपेक्षा की गई थी, जो कहीं तनिक भी हम लोग जानते कि स्वय नवाब सिराजुद्दौला ने दूत भेजा है तो हम लोग क्या पागल थे कि उसका ऐसा अपमान करते?" निदान अग्रेज लोग हर एक बात मे सब दोष इन पर डाल कर अपने बचाव का रास्ता निकाल लेते थे, परन्तु वास्तविक बात और ही थी, यदि उन्हें यह निश्चय था कि यह कौशल जाल अमीचन्द का है तो क़ासिम बाजार मे वाट्स साहब को क्यो लिखते कि वहाँ सावधान रहें और देखें कि दूत को निकाल देने का क्या फल नवाब दर्बार में होता है[1]?

---

1 The Governor returning next day summoned a coun-

अंग्रेजो के इन उद्धत व्यवहारो से चिढकर सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढाई की। अमीचन्द के मित्र राजा रायँ रामसिंह ने गुप्त पत्र लिखकर एक दूत के हाथ अमीचन्द के पास भेजा कि वह तुरन्त कलकत्ते से हट जायँ जिसमे उन पर कोई आपत्ति न आवै परन्तु वह पत्र बीच ही मे दूत को धमकाकर अंग्रेजो ने ले लिया, इसका कुछ भी समाचार अमीचन्द को न विदित हुआ। अंग्रेजो ने तुरन्त सेना भेजकर इन्हें बन्दी किया और कारागार को ले चले। सारे नगर के लोग हाहाकार करने लगे।

"अमीचन्द के यहाँ उनके एक सम्बन्धी हजारीमल्ल कार्याध्यक्ष थे। उन्होने डरकर धन, रत्न और परिवार के लोगो को लेकर भागने का विचार किया। अंग्रेजो से यह न देखा गया, श्रेणी की श्रेणी अंग्रेजी सेना आने और अमीचन्द के घर को घेरने लगी। इनका जमादार एक सद्वंश जात क्षत्रिय था, वह इनके नौकर बरक़न्दाजो और और नौकरो को इकट्ठे करके रक्षा का उपाय करने लगा। फिरङ्गियो ने आकर सिंहद्वार पर हाथाबाहीं आरम्भ की। लहू की नदी बहने लगी। अन्त मे इनके बर्क़न्दाज़ न ठहर सके, एक एक करके बहुतेरे भूतलशायी हो गए। जहाँ तक मनुष्य का साध्य था इन लोगो ने किया। फिरङ्गियो की सेना महा कोलाहल के साथ जनाने मे घुसने लगी, अब तो जमादार का रक्त उबलने लगा। हैं! जिस आर्यमहिला के अन्त पुर मे भगवान सूर्यनारायण अत्यत आदर के साथ प्रवेश करते हैं वहाँ म्लेच्छ सेना का पदस्पर्श होगा? जिस मालिक के परिवार के निष्कलङ्क कुल की, अवगुठनवती कुल कामिनियो को पर पुरुष की छाया भी नहीं छू सकी है उनका पवित्र देह म्लेच्छो के हाथ से कलङ्कित होगा? इससे तो हिन्दू बालाओ को मौत की गोद ही कोमल फूल की सेज है, यह प्राचीन हिन्दू गौरव-नीति तुरन्त जमादार के हृदय मे उदय हुई, उसने कुछ भी आगा पीछा न

---

cil of which the majority being prepossessed against Omichand concluded that the messenger was an engine prepared by himself to alarm them and restore his importance but letters were despatched to Mr Watts, instructing him to guard against and evil consequences from this proceeding —Orme Vol II 54

सोचकर चट एक बडी चिता जला दी और फिर क्या किया---फिर एक एक करके प्रभु परिवार की १३ स्त्रियो का सिर धड से अलग कर चिता मे डालता गया और अन्त मे उसी सती-शोणित-से भरी तलवार को अपने कलेजे मे घुसाकर आप भी वहीं लोट गया ! अनुकूल वायु पाकर उस चिता ज्वाल ने चारो ओर अपनी लोल जिह्वा से लपलपाकर उस राजपुरी को सिंहद्वार तक अपने पेट मे डाल लिया ! फिरङ्गी लोग उठाकर जमादार को बाहर लाए, परन्तु घर के भीतर न घुस सके, अमीचन्द का इन्द्र भवन स्मशान भस्म से भर गया ! केवल इस शोक समाचार को आमरण कीतन करने के लिये ही उस बूढे जमादार की प्राण वायु न निकली" ।[1]

अग्रेजो की अत मे हार हुई । नवाब की सेना ने कलकत्ता पर अधिकार किया । सेनापति हालवेल साहब अग्रेजो के क़िला की रक्षा के उपाय करने लगे पर कोई उपाय चलता न देखकर अन्त मे फिर अग्रेजो के गाढे समय के मीत अमीचन्द के शरण मे गए, बहुत कुछ रोए गाए । दयाद्र चित्त अमीचन्द ने अग्रेजो के दुष्ट व्यवहार का विचार न करके उन्हें आश्वासन दिया और नवाब के सेनापति राजा मानिकचन्द के नाम पत्र लिखकर हालवेल साहब को दिया । पत्र मे लिखा कि "बस अब बहुत शिक्षा हो चुकी, अब जो आज्ञा नवाब देंगे अग्रेज लोग वही करेगे" आदि । हालवेल साहब ने उस पत्र को क़िले के बाहर गिरा दिया । किसी ने उसे ले लिया पर कुछ उत्तर न आया (कदाचित् राजा तक नहीं पहुँचा) । सध्या को अग्रेजो की सेना ने पश्चिम का फाटक खोल दिया । नवाब की सेना क़िला मे घुस आई और बिना युद्ध जितने अग्रेज थे सब पकडे गए । नवाब

---

1 The head of the peons, who was an Indian of a high caste, set fire to this house, and in order to save the women of the family from the dishonour of being exposed to strangers, entered their apartments, and killed it is said, thirteen of them with his own hand, after which he stabbed himself but contrary to his intention not mortally —Orme VI 60.

2 Halwell's India Tracts, page 330

ने किले मे दर्बार किया अमीचन्द और कृष्णवल्लभ को ढूंढने की आज्ञा दी। दोनो साम्हने लाए गए। नवाब ने कुछ क्रोध प्रकाश न करके दोनो का यथोचित आदर किया और बैठाया।

जो अंग्रेज बन्दी हुए थे वह एक कोठरी मे रात को रक्खे गए। १४६ अंग्रेज थे और १८ फुट की कोठरी मे रक्खे गए थे। इन मे से १२३ रात भर मे दम घुट कर मर गए। यह घटना अंग्रेजो मे अन्धकूप हत्या के नाम से प्रसिद्ध है, इस कोठरी का नाम ब्लैक होल (Black-hole) प्रसिद्ध है। यह सब बात सिवाय हालवेल साहब के किसी अंग्रेज या मुसल्मान ऐतिहासिक ने नहीं लिखा है इस लिये अक्षय बाबू इसकी सत्यता मे बडा सन्देह करते है। हालवेल साहब अनुमान करते है कि जो निर्दय व्यवहार अमीचन्द के साथ किया गया था उसी के बदला लेने के लिये उन्होने राजा मानिकचन्द से कहकर अंग्रेजो की यह दुगति कराई थी, परन्तु धन, कुटुम्ब सब नाश होने पर भी सिफारशी चिट्ठी अमीचन्द ने राजा मानिकचन्द के नाम लिख दी थी उसकी बात हालवेल साहब भूल गए। परन्तु अमीचन्द के साथ जो अन्याय बर्ताव किया गया था उसे हालवेल को भी मानना पडा है[1]।

हारने पर भी अंग्रेजो ने कलकत्ता की आशा नहीं छोडी। पलता मे डेरा डाला। मद्रास से सहायता माँगी। वहाँ से सहायता आने का समाचार मिला। इधर सिराजुद्दौला ने भी फिर शान्तरूप धारण किया। जहाज तर कौन्सिल बैठी, उसी समय आरमनी वणिक के द्वारा अमीचन्द का पत्र अंग्रेजो को मिला जिसमे लिखा था "मैं जैसा सदा से था वैसा ही अंग्रेजो का भला चाहने वाला अब भी हूँ। आप लोग राजा राज वल्लभ, राजा मानिकचन्द, जगतसेठ, ख्वाजा वजीद आदि जिससे पत्र व्यवहार करना चाहें उसका मै प्रबन्ध कर दूंगा। और

---

1 But that the hard treatment, I met with, may truly be attributed in a great measure to Omichand's suggestion and insinuations I am well assured from the whole of his subsequent conduct, and this further confirmed me in the three gentlemen selected to be my companions, against each of whom he had conceived particular resentment and you know Omichand can never forgive —Halwell's letter

आप के पास उत्तर ला दूँगा।"[1] अंग्रेज लोग इतिहास लिखने के समय अमीचन्द के सिर चाहे जैसी कटुक्ति कर वा दोषी ठहरावें परन्तु ऐसे कठिन समयो मे उनकी सहायता बडे हर्ष से लेते रहे है और केवल सन्देह ही सन्देह पर अपना काम निकल जाने पर उनके साथ असद्व्यवहार करते रहे हैं। यदि इनकी सहायता न मिलती तो नवाब दर्बार या राजा मानिकचन्द प्रभृति तक उनके पत्र तक नहीं पहुँच सकते थे। जो राजा मानिकचन्द अंग्रेजो के खून के प्यासे थे वह केवल अमीचन्द के उद्योग से अंग्रेजो का दम भरने लगे[2]।

जगतसेठ और अमीचन्द हर एक प्रकार से अंग्रेजो की मङ्गल कामना नवाब दर्बार मे करने लगे। अमीचन्द ने लिखा कि "नवाब के डर से कोई बोल नहीं सकता है पर ख्वाजा वजीद आदि प्रसिद्ध सौदागर लोग अंग्रेजो के फिर आने के लिये उत्सुक हैं[3]।"

निदान फिर अंग्रेजों का कलकत्ते मे प्रवेश हुआ। अब नवाब की इच्छा अंग्रेजो से सन्धि कर लेने की हुई। वह स्वय कलकत्ता आए और अमीचन्द के बाग में दर्बार हुआ। अंग्रेजो के दो प्रतिनिधि आए और सन्धि की बातें निश्चित हुईं[4]। परन्तु कुचक्रियो ने अंग्रेजो को भडका दिया, अनायास रात को अंग्रेजो

---

1 Consultations on board the Rhomia Schooner, Fulta, August 22, 1756

2 Omichand and Manik Chand were at this time in friendly correspondenc with the English they negotiated at this time between the Nawab and the English understanding how to run with the bore and keep with the bound —Revd Long

3 Omichand writes from Chunsura that Coja Wafid and other merchants would be glad to see the English return were it not for the fear of the Nabab —Revd Long

4 February 4, 1757 at seven in the evening the Subah gave them audience in Omichand's garden, where he affected to appear in great state, attended by the best looking

की तोप छूटने लगी। नवाब पहिले तो घबड़ाए पर अन्त मे अपने मन्त्रियो तथा सेनापति मीर जाफर की चाल समझ गए। ऐसे विश्वासघाती लोगो के भरोसे अग्रेजो से लडना उचित न समझ कर वहाँ से पीछे लौट आए और दूसरे स्थान पर डेरा डालकर अग्रेजो से सन्धि की बात करने लगे। अन्त मे सन्धि हो गई। इस सन्धि के द्वारा वाणिज्य का अधिकार मिला, कलकत्ता मे किला बनाने और टेकसाल खोलने की आज्ञा मिली और कलकत्ता की लूट मे जो हानि अग्रेजो की हुई थी वह नवाब ने देना स्वीकार किया।

सन्धि के विरुद्ध सिराजुद्दौला के आदेश के विपरीत अग्रेजो ने फरासीसियो के किला चन्दननगर पर चढाई की। एक तो फरासीसी भी दृढ थे दूसरे महाराज नन्दकुमार भारी सेना लिए पास ही डेरा डाले थे, सामने पहुँच कर अग्रेजो को महा कठिनाई हुई परन्तु उस समय भी सेठ अमीचन्द ही काम आए। उन्होने जाकर नन्दकुमार को समझाया और वह वहाँ से हट गए। अग्रेजो की जय हुई।[1]

सिराजुद्दौला अग्रेजो की इस धृष्टता पर बहुत ही चिढ गए। फिर अग्रेजो को दण्ड देने के लिये तयारिएँ होने लगी, परन्तु इस समय तक सारा देश सिराजुद्दौला के अत्याचार से दुखित था, नवाब के सभी मन्त्री विरुद्ध हो रहे थे। गुप्त मन्त्रणा होकर एक गुप्त सन्धिपत्र लिखा गया। इसमे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक करोड, कलकत्ते के अग्रेज और आरमनी वणिको को ७० लाख और सेठ अमीचन्द को ३० लाख रुपया मिलने की बात थी इनके सिवाय और जिनको जो मिलना था वह अलग फर्द पर लिखा गया। सन्धि पत्र का मसौदा भेजने के समय वाटसन साहब ने लिखा था कि 'अमीचन्द जो चाहते हैं उसको देने मे आगा पीछा

---

men amongst his Officers, hoping to intimate them by so warlike an assembly —Strafton's Reflections

1 Nuncoomer had been brought by Omichand for this English and on their approach the troops of Sirajuddaulah were withdrawn from Chandannagar —Thomson's History of the British Empire, Vol I, p 223

करने से काम न बनैगा वह सहज मनुष्य नहीं है सब भेद नवाब से खोल देगा तो कोई काम भी न होगा।' बस इसी पर अग्रेज लोग अमीचन्द से चिढ गए, और उनके सारे उपकारो को भुलाकर जाली सन्धि पत्र बनाया और अमीचन्द को धोखा दिया। पलासी की लडाई, अग्रेजो की विजय और सेठ अमीचन्द को प्रतारित करने का इतिवृत्त इतिहासो मे प्रसिद्ध ही है। अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये अग्रेज ऐतिहासिको ने सारा दोष अमीचन्द पर थोपकर यथेष्ट गालि प्रदान की उदारता दिखलाई है परन्तु विचार कर देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये आदि से अन्त तक अग्रेजो के सहायक रहे और उनके हाथ से अनेक अन्याय बर्ताव होने पर भी उनके हित साधन से मुँह न मोडा और अग्रेज लोग केवल सन्देह कर करके सदा इनका अनिष्ट करते रहे, परन्तु यह सन्देह केवल अपने को दोष मुक्त करने के लिये था वास्तव मे इनके भरोसे और विश्वास पर ही इनका सब काम चलता था। क़सम खाकर मीर जाफर ने सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किया परन्तु अग्रेजो को विश्वास नहीं हुआ, जब जगतसेठ और सेठ अमीचन्द ने ज़मानत किया तब अग्रेजो को विश्वास हुआ[१]।

— o —

बाबू फ़तह चन्द्र

सेठ अमीचन्द के पुत्र सुयोग्य सेठ फतहचन्द इस घटना से अत्यन्त उदास होकर काशी चले आए। इनका विवाह काशी के परम प्रसिद्ध नगरसेठ गोकुलचन्द साहू की कन्या से हुआ। सेठ गोकुलचन्द के पूर्वजो ने काशी के वर्तमान राज्यवश को काशी का राज्य, मीर रुस्तमअली को पदच्युत कराके, अवध के नव्वाब से प्राप्त कराने मे बहुत कुछ उद्योग किया था और तभी से वह उस राज्य के महाजन नियत हुए, तथा प्रतिष्ठापूर्वक "नौपति" की पदवी प्राप्त हुई।

जिन नौ महाजनो ने उस समय काशीराज के मूल पुरुष राजा मनसाराम को राज्य दिलाने मे सर्व प्रकार सहायता दी थी, उन्हें नौपति की उपाधि दी गई थी। यह "नौपति" पदवी अब तक प्रसिद्ध है, परन्तु अब उन नवो वशो मे केवल

---

१ 'ज़ामिन उसके वही दोनो महाजनान मज़कूर हुए'—मुताखरीन का उर्दू अनुवाद।

इसी एक वश का पता लगता है। और उसी समय से इनके यहाँ विवाहादि शुभ कर्म्मों, तथा शोकसमय शोकसम्मिलन तथा पगडी बँधवाने के हेतु, स्वयम् काशी-राज उपस्थित होते हैं। यह मान इस वश को अब तक प्रतिष्ठापूवक प्राप्त है। सेठ गोकुलचन्द के और कोई सन्तान न होने के कारण बाबू फतहचन्द उनके भी उत्तराधिकारी हुए[1]।

फारसी मे एक ग्रन्थ ता २८ सफर सन् १२५४ हिज्री का लिखा है जिसमे गवर्नरजेनरल की ओर से प्रधान राजा महाराजा और रईसो को जैसे कागज़ और जिस प्रशस्ति से पत्र लिखा जाता था उस का सग्रह है उस मे इनकी प्रशस्ति यो लिखी है —

دادودام چند ساہ — بابو صاحب مہربان دوستان سلامت
خاتمہ - کاغذ افشاں مہر خرد

अर्थात् आदि बाबू साहब मेहरबान दोस्तान सलामत अन्त-विशेष क्या लिखा जाय कागज़ सोनहल छिडकाव का छोटी मोहर—

बाबू फतहचन्द ने अङ्गरेजो को राज्यादि के प्रबन्ध करने मे बहुत कुछ सहायता दी थी। सुप्रसिद्ध "दवामी बन्दोबस्त" के समय डङ्कन साहब ने इनकी सहायता का पूर्ण धन्यबाद दिया है। इनके काशी आ बसने के कुछ काल उपरान्त उनके बडे भाई राय रत्नचन्द्र बहादुर भी मुर्शिदाबाद से यहाँ ही चले आए।

---

१ ये हनुमान जी के बडे भक्त थे। प्रति मङ्गलवार को काशी भदैनी हनुमानघाट वाले बडे हनुमान जी के दर्शन को जाया करते थे। काशी मे बडे हनुमान जी का मन्दिर परम प्राचीन और प्रसिद्ध है। यहाँ केवल एक विशाल प्रस्तरमूर्त्ति हनुमान जी की है। एक दिन उन्हे जो प्रसाद मे माला मिली वह पहिरे हुए घर चले आए। यहा आकर जो माला उतारी तो उस मे से एक हनुमान जी की स्वर्णप्रतिमा छोटी सी अगुष्ठ प्रमाण गिर पडी। उसी समय से इस प्रतिमा की सेवा बडी भक्ति से होने लगी और अब तक इस वश मे कुलदेव यही महावीर जी हैं। यह मूर्ति साधारण हनुमान जी की भाँति नही है, वरञ्च बिलकुल बानराकृति है और एक हाथ मे लड्डू लिए हुए हैं।

उनके साथ डङ्का, निशान, सन्तरी का पहरा, माही मरातिब नक़ीब आदि रियासत के पूरे ठाठ थे ।

राय रत्नचन्द बहादुर ने रामकटोरेवाले बाग़ मे आकर निवास किया । वहाँ इनके श्रीठाकुर जी, जिनका नाम श्री लाल जी है, अब तक वतमान हैं । यहीं बाग काशी जी मे इस बश का पहिला स्थान समझा जाता है तथा अब तक प्रत्येक विवाह और पुत्रोत्सव के पीछे डीह डीहवार (गृह देवता) की पूजा यहीं होती है । प्रतीति होता है कि ये उस समय तक श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी थे, क्योकि ठाकुर जी की मूर्ति तथा सामने गरुडस्तम्भ और मन्दिर के ऊपर चक्र-स्थापन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत है । इस वश मे "नक़ीब" की प्रथा बाबू गोपालचन्द तक थी । बाबू फतहचन्द का व्यवहार देन लेन का था ।

—— o ——

बाबू हर्षचन्द्र

बाबू फतहचन्द के एकमात्र पुत्र बाबू हषचन्द हुए । ये काशी मे काले हषचन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनके प्रशसनीय गुणानुवाद अब तक साधारण जन तथा स्त्रिएँ ग्राम्यगीतो मे गाया करती हैं ।

बाबू हर्षचन्द के बाल्यकाल ही मे इनके पूजनीय पिता ने परलोक प्राप्त किया । लोगो ने इनके उमङ्ग का अच्छा अवसर उपस्थित देख इन्हें राय रत्नचन्द बहादुर से लडा दिया । परन्तु ज्यो हीं इन्हो ने धूर्तों की धूत्तता समझी, चट पितृव्य के पावो पर जा गिरे और अपराध क्षमा कराकर प्रेमपल्लव को प्रवर्धित किया । राय रत्नचन्द्र के बेटे बाबू रामचन्द्र निस्सन्तान मरे । इससे उनकी भी सम्पूर्ण सम्पत्ति के उत्तराधिकारी ये ही हुए ।

इनका सम्मान काशी मे कैसा था इसी से समझ लीजिए कि, सन् १८४२ मे गवर्न्मेण्ट ने आज्ञा दी कि काशी की प्राचीन तौल की पन्सेरियाँ उठा कर अग्रेज़ी पन्सेरी जारी हो । काशी के लोग बिगड गए और हरताल कर दी, तीन दिन तक हरताल रही, अन्त मे उस समय के प्रसिद्ध कमिश्नर गबिन्स साहब ने बाबू हर्षचन्द्र (सरपञ्च), बाबू जानकीदास और बाबू हरीदास साहू को पञ्च माना ।

काशी के लोगो ने भी इसे स्वीकार किया। बाग सुन्दरदास मे बड़ी भारी पञ्चायत हुई और अन्त मे यही फैसला हुआ कि तिलोचन आदि की पन्सेरियाँ ज्यो की त्यो ही जारी रहैं। गबिन्स साहब भी इससे सम्मत हुए और नगर मे जय जयकार हो गया। इस बात के देखनेवाले अब तक जीवित हैं कि जिस समय पुरानी पन्सेरियो के जारी रहने की आज्ञा लेकर उक्त तीनो महाशय हाथी पर सवार होकर चले, बीच मे बाबू हर्षचन्द्र बैठे थे, मोरछल होता था, बाजे बजते थे, सारे शहर की खिलकत साथ थी और स्त्रियें खिडकियो से पुष्पवर्षा करती थीं, तथा इस सवारी को लोगो ने इसी शोभा के साथ नगर मे घुमाया था।

बुढ़वामगल के प्रसिद्ध मेले को उन्नति देने वाले यही थे। पहिले लोग वर्ष के अन्तिम मगल को जिसे बूढ़ा मगल कहते थे, दुर्गाजी के दर्शनो को नाव पर सवार होकर जाया करते थे। धीरे धीरे उन नावो पर नाच भी कराने लगे और अन्त मे बाबू हर्षचन्द्र तथा काशीराज के परामर्शानुसार बुढवामगल का वर्तमान रूप हुआ और मेला चार दिन तक रहने लगा। मैने कई बेर काशीराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से कहते सुना है कि इस मेले का दूलह तो तुम्हारा ही बश है। इन के यहाँ बुढवामङ्गल का कच्छा बडी ही तैयारी के साथ पटता था और बडे ही मर्यादापूर्वक प्रबन्ध होता था। बिरादरी मे नाई का नेवता फिरता था और सब लोग गुलाबी पगडी और दुपट्टे तथा लडकों को गुलाबी टोपी दुपट्टे पहिना कर ले जाते थे। नौकर आदि भी गुलाबी पगडी दुपट्टे पहिनते थे। जिन के पास न होता उन को यहाँ से मिलता। गगा जी के पार रेत मे हलवाईखाना बैठ जाता और चारो दिन वहीं बिरादरी की जेवनार होती। काशीराज हर साल मोरपखी पर सवार हो इनके कच्छे की शोभा देखने आते। यह प्रथा ठीक इसी रीति पर बाबू गोपालचन्द्र के समय तक जारी रही।

ये काशिराज के महाजन थे। और बहुतेरे प्रबन्ध उस रियासत के इन के सुपुर्द थे। राज्य की अशर्फियें इन के यहाँ रहती थीं और उनकी अगोरवाई मिलती थी। काशिराज इन्हें बहुत ही मानते थे, राजकीय कामो मे प्राय इनकी सलाह लिया करते थे।

बुढवा मगल की भाँति होली का उत्सव भी धूम धाम से होता और बिरादरी की जेवनार, महफिल होती। वर्ष मे अपने तथा बाबू गोपालचन्द्र के जन्मदिवस को ये महफिल जेवनार करते।

बिरादरी मे इनका ऐसा मान्य था कि लोग बडे बडे प्रतिष्ठित और धनिको के रहते भी इन्हें अपना चौधरी मानते थे और यह प्रतिष्ठा इस वश को आज तक प्राप्त है।

चौखम्भास्थित अपने प्रसिद्ध भवन मे इन्हो ने ही सुन्दर दीवानखाना बन- वाया था। सुनते हैं कुछ ऐसा विवाद उस समय उपस्थित हो गया था कि जिसके कारण इस बडे दीवानखाने की एक मजिल इन्हो ने एक रात्रि मे तैयार कराई थी।

उस समय इनकी सवारी प्रसिद्ध थी। जब ये घर के बाहर कहीं जाते, बिना जामा और पगडी पहिरे न जाते, तामजाम पर सवार होकर जाते, नक़ीब बोलता जाता। आसा, बल्लम, छडी, तलवार, बन्दूक आदि बाँधे पचास साठ सिपाही साथ मे होते। यह प्रथा कुछ कुछ बाबू गोपालचन्द्र तक थी।

ये गोस्वामी श्री गिरिधर जी महाराज के शिष्य हुए। श्री गिरिधर जी महाराज की विद्वत्ता तथा अलौकिक चमत्कार शक्ति लोकप्रसिद्ध है। श्री गिरि- धर जी महाराज इन पर बहुत ही स्नेह रखते थे, यहाँ तक कि इनकी बेटी श्रीश्यामा बेटी जी इन्हें भाई के तुल्य मानतीं और भाईदूज को तिलक काढती थीं। जिस समय श्री गिरिधर जी महाराज श्री जी द्वार से श्री मुकुन्दराय जी को पधराकर काशी लाए, सब प्रबन्ध इन्हीं को सौंपा गया था। बडी धूम धाम से बारात सजा कर श्री मुकुन्दराय जी को नगर के बाहर से पधरा लाए थे। इसका सविस्तार वर्णन उक्त महाराज की लिखाई "श्री मुकुन्दराय जी की वार्ता" मे है। जब कभी महाराज बाहर पधारते, मन्दिर इन्ही के सुपुर्द कर जाते। उक्त महाराज तथा श्रीश्यामा बेटी जी के लिखे मुख्तारनामा आम इनके तथा बाबू गोपालचन्द्र जी के नाम के अब तक रक्षित है।

इन्हो ने उक्त महाराज की आज्ञा से अपने घर मे श्री वल्लभकुल के प्रथानुसार ठाकुर जी की सेवा पधराई और उनके भोग राग का प्रबन्ध राजसी ठाठ से किया। ठाकुर जी की परम मनोहर मूर्ति, युगल जोडी, धातु बिग्रह है, तथा नाम "श्री मदन मोहन जी" है। वर्तमान शैली से सेवा होते हुए ८५ वर्ष से अधिक

हुआ, परन्तु सुनते हैं कि ठाकुर जी और भी प्राचीन हैं। पहिले इनकी सेवा गोकुलचन्द्र साहो के यहाँ होती थी। बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू गोकुलचन्द्र मे जिस समय हिस्सा हुआ, उस समय एक बाग़, बडा मकान, एक बडा ग्राम माफी और पचास हजार रुपया ठाकुर जी के हिस्से मे अलग कर दिया गया और ठाकुर जी का महा प्रसाद नित्य ब्राह्मण वैष्णव तथा सद्गृहस्थ लेते हैं।

इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम चम्पतराय अमीन की बेटी से। इन चम्पतराय का उस समय बडा जमाना था। सुनते है कि वह इतने बडे आदमी थे कि सोने की थाल मे भोजन करते थे। जिस समय चम्पतराय की बेटी ब्याह कर आई तो यहाँ उन्हे मामूली बतन बतने पडे। इस पर उन्हो ने कहा "हाय, अब हमको इन बतनो मे खाना पडेगा।" अब एक चम्पतराय अमीन के बाग़ के अतिरिक्त और कोई चिन्ह इनका नहीं है। इनसे बाबू हर्षचन्द्र को कोई सन्तान नहीं हुई। दूसरा विवाह इनका बाबू वृन्दावनदास की कन्या श्यामा बीबी से हुआ। इन्हीं से इनको पाँच सन्तान हुईं, जिन मे से दो कन्या तो बचपन ही मे मर गईं, शेष तीन का वश चला। यह बाबू वृन्दावन दास भी उस समय के बडे धनिको मे थे, परन्तु पीछे इन का भी वह समय न रहा। इन के दो बाग़ थे, एक मौजा कोल्हुआ पर और दूसरा महल्ला नाटीइमली पर। ये दोनो बाग बाबू हर्षचन्द्र को मिले। बाबू वृन्दावनदास को हनुमान जी का बडा इष्ट था। इन के स्थापित हनुमान जी अब तक नाटीइमली के बाग़ मे है।

एक समय श्री गिरिधर जी महाराज को चालिस सहस्र रुपए की आवश्यकता हुई। उन्होने बाबू हर्षचन्द्र से कहा कि इस का प्रबन्ध कर दो। इन्हो ने कहा महाराज इस समय इतना रुपया तो प्रस्तुत नहीं है। कोल्हुआ और नाटीइमली का बाग़ मैं भेंट कर देता हूँ, इसे बेच कर काम चला लीजिए। श्री महाराज का ऐसा प्रताप था कि एक कोल्हुआ का बाग़ चालीस हजार मे बिक गया और नाटी-इमली का बाग़ बच गया। इस बाग़ का नाम महाराज ने मुकुन्दबिलास रक्खा। यह अद्यावधि मन्दिर के अधिकार मे है और काशी के प्रसिद्ध बाग़ों मे एक है। इस वश से इस बाग़ से अब तक इतना सम्बन्ध शेष है कि काशी के प्रसिद्ध भरत-मिलाप के मेले मे इसी बाग के एक कमरे मे बैठ कर इस वश के लोग भगवान के दर्शन करते हैं और इस मे भगवान का विमान ठहरता है, तथा इस वश वाले जाकर पूजा आरती करते, भोग लगाते और १) भेंट करते हैं। दो दिन और भी श्रीराम-

चन्द्र जी की पहुनई होती है, एक दिन बाग़ रामकटोरा मे और एक दिन चौका-घाट पर जिस दिन हनुमान जी से भेंट होती है।

यहाँ पर इस रामलीला का सक्षिप्त इतिहास लिख देना भी हम उचित समझते हैं। जब काशी मे जगल बहुत था (बनकटी के समय), उस समय यहा एक मेघा भगत रहते थे। उन्हें श्री भगवान के दशन की बडी लालसा हुई। उन्होने अनशन व्रत लिया। एक दिन रामचन्द्र जी ने स्वप्न मे आज्ञा दी कि इस कलियुग मे इस चाक्षुष जगत मे हमारा प्रत्यक्ष दशान नहीं हो सकता। तुम हमारी लीला का अनुकरण करो। उस मे दर्शन होगा, तथा धनुष बाण वहाँ प्रत्यक्ष छोड गए, जिस की पूजा अब तक होती है। मेघा भगत ने लीला आरम्भ की और उनकी मनोवासना पूरी हुई। यह लीला चित्रकोट की लीला के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिस दिन श्री रामचन्द्र की झलक मेघा भगत को झलकी थी, वह भरतमिलाप का दिन था और तभी से यह दिन परम पुनीत समझा गया, तथा अब तक लोगो का विश्वास है कि उस दिन रामचन्द्र जी की झलक आ जाती है। इस लीला के पीछे गोस्वामी तुलसीदास जी ने लीला आरम्भ की, जो अब अस्सी पर तुलसी-दास जी के घाट पर होती है, और उसके पीछे लाट भरव की लीला आरम्भ हुई। इस लाटभैरो की लीला मे 'नककटैया' (शूर्पनखा की नाक काटने की लीला) मसजिद के भीतर होती है, जो मुसलमानो की अमलदारी से चली आती है, और प्राय इस के लिये काशी मे हिन्दू मुसलमानो मे झगडा हुआ किया है। निदान मेरी समझ मे रामलीला की प्रथा सब प्रथम ससार मे मेघा भगत ने आरम्भ की। इस लीला की यहाँ प्रतिष्ठा बहुत ही अधिक है। सब महाजन लोग इसमे चिट्ठा भरते हैं और प्रतिष्ठित लोग बिना कुछ लिए सब सेवा करते है। इस चिट्टे का आरभ पहिले बाबू जानकीदास और उक्त बाबू हर्षचन्द्र के वशवाले करते है और फिर नगर के सब महाजन यथाशक्ति लिखते है। पहिले तो विजया दशमी के दिन यहाँ के बडे बडे महाजन, रात्रि को जब बिमान उठता था, जामा पगडी पहिर कर कन्धा लगाते थे। अब तक भी बहुत लोग कन्धा देते हैं। विजया दशमी और भरत मिलाप मे अब तक प्राचीन मर्यादावाले लोग पगडी पहिर कर दशन को जाते हैं। भरत मिलाप यहाँ के प्रसिद्ध मेलो मे है। सारा शहर सूना हो जाता है और भरत मिलाप के स्थान से लेकर 'अयोध्या' तक, जिसमे लगभग आधी मील

का अतर होगा, मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते हैं । भरतमिलाप ठीक गोधूली के समय होता है । इस दिन दर्शनो के लिये काशिराज भी आया करते हैं ।

सुनते हैं एक समय किसी अँगरेज़ हाकिम ने कहा कि हनुमान जी तो समुद्र पार कूद गए थे, तब हम जानें जब तुम्हारे हनुमान जी वरुणा नदी पार कूद जायँ । हनुमान जी चट कूद गए, परन्तु उस पार जाते ही उनका प्राणान्त हो गया । उस अँगरेज़ की सार्टिफिकेट अब तक महन्त के पास है ।

बाबू हरिकृष्णदास टेकमाली ने अपने ग्रन्थ "गिरिधरचरितामृत" मे उनका चरित्र वर्णन करते समय लिखा है कि ये कविता भी करते थे, परन्तु अब तक इनकी कविता हम लोगो के देखने मे नहीं आई ।

इनका स्वभाव बडा ही अमीरी और नाजुक था, जनाने मर्दाने सब घरो मे फौवारे बने थे। गर्मियो मे जहाँ वह बैठते फौवारा छूटा करते। एक दिन बाबू जानकीदास ने कहा कि आप बीमा का रोजगार क्यो नहीं करते यह बिना गुठली का मेवा है। इन्होंने उत्तर दिया "सुनिए बाबूसाहब हम ठहरे आनन्दी जीव, अपनी जान को बखेडे मे कौन फँसावे, सावन भादो की अँधेरी रात मे आनन्द से सोए हैं, पानी बरस रहा है, हवा के झोके आ रहे हैं, उस समय ध्यान आया नावो का, प्राण सूख गया, विचारा इस समय हमारी दस नाव गगाजी मे हैं कहीं एक भी डूबी तो दसहज़ार की ठुकी, चलो सब आनन्द मिट्टी हुआ" ।

जौनपुर के राजा शिवलाल दूबे से इनसे बहुत ही स्नेह था, नित्य मिलना और हवा खाने जाने का नियम था ।

सन् १८६० ई० मे गवर्न्मेन्ट ने इनकम टैक्स लगाया था और काशी से सवा-लाख रुपया वसूल करने की आज्ञा दी थी। इसके प्रबन्ध के लिये एक कमिटी बनाई गई थी जिसका प्रबन्ध इनके हाथ मे था ।

गोपालमन्दिर के दोनो नक्कारखाने इन्हीं के यहाँ से बने हैं। एक तो बाबू गोपालचन्द्र के जन्म पर बना था और दूसरा बाबू हरिश्चन्द्र के जन्म पर ।

हम श्री मुकुन्दरायजी के मन्दिर तथा श्री गिरिधरजी महाराज के विषय मे ऊपर लिख चुके हैं परन्तु कुछ बातें और भी लिखनी आवश्यक रह गई हैं ।

जिस समय मन्दिर बनकर तयार हुआ और श्री मुकुन्दरायजी यहाँ पधारे यहाँ के महाजनो ने, जिनमे ये प्रधान थे, बिचार किया कि इस मन्दिर के व्यय

निर्वाहार्थ कुछ प्रबन्ध होना चाहिए, सभो ने सम्मति कर के एक चिट्ठा खडा किया श्रौर सवापाँच श्राना सैकडा मन्दिर सब व्यापारी काटने लगे, यह कमखाब बाफता श्रादि यावत् बनारसी कपडे, गोटे, पट्ठे श्रौर जवाहिरात, इत्यादि पर कटता था। यह चिट्ठा बहुत दिनो तक चलता रहा, श्रौर हिन्दू मुसल्मान सभी व्यापारी इसे देते रहे परन्तु श्रीगिरिधर जी महाराज के पीछे यह शिथिल हो चला है श्रब तक सवापाँच श्राने सैकडे सब व्यापारी काट तो लेते हैं परन्तु कोई मन्दिर मे देता है, कोई नहीं श्रौर कोई उसे दूसरे ही धर्मार्थ काय मे लगा देता है।

श्री गिरिधर जी महाराज का ऐसा शुद्ध चरित्र श्रौर चमत्कार प्रकाश था, कि काशी ऐसी शैव नगरी मे उन्ही का प्रताप था जो वैष्णवता की जड जमाई श्रौर इस मन्दिर को इतनी उन्नति बिना किसी राज्याश्रय के दी, परन्तु इनका स्वभाव इतना सादा था कि, श्रात्मोत्कर्ष श्रौर श्रात्मसुख की श्रोर इनका तनिक भी ध्यान न था। बाबू हर्षचन्द्र ने बहुत तरह से निवेदन किया कि जैसे श्री बल्लभकुल के श्रन्यान्य प्रतापी गोस्वामि बालको का जन्मदिनोत्सव होता है वैसे ही श्रापका भी हो, परन्तु महाराज इसे स्वीकार नहीं करते थे, जब बहुत दिनो तक यह श्राग्रह करते रहे तब महाराज ने स्वीकार किया परन्तु इस प्रतिबन्ध के साथ कि इस उत्सव पर हम मन्दिर से कुछ व्यय न करेंगे निदान पौषकृष्ण तृतीया को महाराज के जन्म दिन का उत्सव होने लगा, श्री गोपाल लाल जी, श्री मुकुन्दराय जी तथा श्री गोपीनाथ जी का साठन का बागा (वस्त्र) श्री गिरिधर जी महाराज का बागा सब यहीं से जाता श्रौर वहाँ धराया जाता, तथा महाराज के केसर स्नान मे भोग, निछावर, श्रारती तथा भेट श्रादि इन्हीं की श्रोर से होता है, श्रब यह उत्सव श्री मुकुन्दराय जी के घर के सब सेवक मानते हैं।

सन् १८३४ ई० मे गवर्न्मेन्ट की श्रोर से महाजनो से व्यापार की श्रवस्था श्रौर सोना चाँदी की बिक्री के कमी का कारण पूछा गया था। उन प्रश्नो का जो उत्तर बाबू हर्षचन्द्र ने दिया था, वह पुराने कागजो मे मुझे मिला। उस से देश दशा का ज्ञान होता है इसलिये उसका श्रनुवाद यहाँ प्रकाशित करता हूँ।

१ प्रश्न—सन् १८१९ से चाँदी श्रौर सोना की खरीद कम हुई है या श्रधिक श्रौर इसका कारण क्या है ?

उत्तर—सन् १८१९ से चाँदी श्रौर सोने की खरीद बहुत कम हो गई है। चाँदी की खरीद मे कमी का कारण यह है कि जब बनारस मे टेकसाल जारी

थी, चाँदी का लेन देन जारी था, इससे भाव भी उसका महँगा था और जब से टेककाल बन्द हुआ तब से इसकी बिक्री कम हो गई इससे भाव भी गिर गया।

सोने की खरीद कम होने का कारण यह है कि उस समय इस प्रात के लोग सुखी थे और देहाती लोग भी बडा लाभ उठाते थे इसीलिये सोने की बाहरी खरीदारी अधिक होती थी और भाव भी महँगा था। और अब चारो ओर दरिद्रता फैल गई है तो सोना की खरीद कहाँ से हो ?

२ प्रश्न—क्या कोई ऐसा दस्तूर नियत हुआ है जिससे चाँदी सोना का लेन देन कम होकर हुडी और किसी दूसरे प्रकार का एवज मवावज जारी हुआ है ?

उत्तर—सोने चाँदी के बदले मे कोई दस्तूर हुण्डी का जारी नहीं हुआ है व्यापार की कमी कि जिसका कारण चौथे प्रश्न के उत्तर मे लिखा जायगा और भाव के गिरने से यह कमी हुई है।

३ प्रश्न—टेकसाल बन्द होने से बाहरी सोना चाँदी की आमदनी कम हो गई है या नहीं ?

उत्तर—टेकसाल बन्द हो जाने से एक बारगी बाहरी आमदनी सोना चाँदी की कम हो गई है।

४ प्रश्न—इस बात पर विचार करके लिखिए कि सन् १८१३ व १८१४ से अब तक भाव हुण्डियावन का बडे बडे दिसावरो मे पर्ता फैलाने से कमी के कारण व्यापार मे अन्तर पडा है, या सन् १८१८ व १८१६ मे सोना चाँदी की आमदनी की कमी से ?

उत्तर—सन् १८१३ से १८२० व १८२२ तक इस प्रात के लोग बडा लाभ उठाते थे। और हर तरह का रोजगार जारी था। और भाव हुण्डियावन उस सन् से अब कम नहीं है। वरन् अधिक है, यद्यपि उन सनो मे बनारस के पुराने सिक्के की चलन थी जिसकी चाँदी मे बट्टा नहीं था जब से फर्रुखाबादी सिक्का चला उसके बट्टा के कारण हुण्डियावन का भाव हर देसावर मे बढ गया। हाँ, इन दिनो अवश्य फर्रुखाबादी

सिक्का जारी रहने पर भी भाव हुण्डियावन गिर गया है। रोज़-
गार की कमी के कारण नीचे निवेदन करता हूँ।

१—परम उपकारी कम्पनी बहादुर की सरकार से कि जो उपकार का भण्डार और प्रजा पोष ण की खानि है सूद की कमी हो गई कि सन् १८१० तक सब लोग सर्कार मे रुपया जमा करके छ रुपया सैकडा वार्षिक सूद लेते थे अब पॉच रुपया से ह ोते होते चार रुपए तक नौबत पहुँच गई। प्रजा का काम कैसे चलै ?

२—अंग्रेज़ साहबो के कारबार बिगड जाने से, कि जिनकी ओर से हर जिलो मे नील की बडी खेती ोती थी और उससे ज़मींदारो को बडा लाभ होता था, ज़मींदारो को कष्ट है और खेती पडी रह गई।

३—अदालत के अप्रबन्ध और रुपया के वसूल होने मे अदालत के डर के कारण कारबार देन लेन महाजनी कि जिससे सूद का अच्छा लाभ था एक दम बन्द हो गया।

४—साहब लोगो के बहुत से हाउस बिगड जाने से बहुतेरे हिन्दुस्तानियो के काम, लाखो रुपया मारे जाने के कारण बन्द हो जाने से दूसरा काम भी नहीं कर सकते।

५—बिलायत से असबाब आने और सस्ता बिकने के कारण यहाँ के कारीगरो का सब काम बन्द और तबाह हो गया।

६—सर्कार की ओर से इस कारण से कि विलायत मे रूई पैदा न हुई यहाँ से रुई की खरीद हुई इससे भी कुछ लाभ था पर वह भी बन्द हो गई।

इन्हीं कारणो से रोज़गार मे कमी हो गई है।

५ प्रश्न—चलन के रुपया की रोज़गार के काम मे आमदनी कलकत्ता से होती है या नहीं यदि होती है तो उसका खर्च अनुकूल और प्रतिकूल समय मे क्या पडता है ?

उत्तर—कलकत्ता से बहुत रुपया चलान नहीं आता और यदि कुछ रुपया आता है तो लाभ नही होता वरञ्च बीमा और सूद की हानि के कारण घाटा पडता है इसी से रुपया के बदले मे हुडी का आना जाना जारी है।

द बाबू हर्षचन्द

ता० २९ जूलाई सन् १८३४

एक बेर यह श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को पुरी गए थे। तब तक रेल नहीं चली थी, अतएव खुशकी के रास्ते गए थे। बङ्गाल के प्रसिद्ध लाला बाबू[1] से इनके वश से मुर्शिदाबाद ही से बहुत सम्बन्ध था। एक दिन ये उनके यहाँ मेहमान हुए। वहाँ इनके ठाकुर श्री कृष्णचन्द्रमा जी का बहुत भारी मन्दिर और वभव है। सुना है कि इनके पहुँचते ही उनकी ओर से श्री ठाकुर जी का बालभोग महा-प्रसाद आया जो कि सौ चाँदी के थालो मे था। सब प्रसाद फलाहारी था और एक सौ ब्राह्मण लाए थे, जो सबके सब एक ही रङ्ग का पीताम्बर उपरना पहिरे हुए थे।

इनका नाम तैलग देश मे बहुत प्रसिद्ध है। जो बडा दीवानखाना इन्होने बनवाया, उसके ऊपर एक छोटा मन्दिर भी श्री ठाकुर जी का है। उस पर स्वर्ण कलश लगे हुए हैं। उसी से सारे तैलङ्ग देश मे इनका नाम नवकोटि नारायण[2]

---

१ इस वश के अधिष्ठाता दीवान गङ्गागोविन्द सिंह थे जो कि वारेन हेस्टिङ्गज के बनिया थे, और बडी सम्पत्ति छोड मरे। बङ्गाल मे ये पाइकपाडा के राजा के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु इनका मुख्य वासस्थान मौजा कान्दी जिला मुर्शिदाबाद है। इन्होने अपनी माता के श्राद्ध मे २० लाख रुपया व्यय किया था और उसमे समग्र बङ्गाल के राजा महाराजा आए थे। ऐसा श्राद्ध कभी नही हुआ था। इनके वश मे राजा कृष्ण-चन्द्र सिंह प्रसिद्ध नाम लाला बाबू हुए। उन्होने अपने राज्यैश्वय को छोडकर श्री वृन्दावनमे बास किया। वहाँ वे मधुकरी माँग कर खाते थे। श्रीठाकुरजी का मन्दिर और वैभव काँदी और श्री वृन्दावन मे बहुत बढाया (See Growse's Mathura)। इनके विषय मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी अपने उत्तरार्द्ध भक्तमाल मे लिखते हैं—

लाला बाबू बङ्गाल के वृन्दावन निवसत रहे।
छोडि सकल धन धाम वास ब्रज को जिन लीनो॥
मागि मागि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो।
हरि मन्दिर अति रुचिर बहुत धन दै बनवायो॥
साधु सन्त के हेत अन्न को सत्र चलायो।
जिनकी मत देहहु सब लखत ब्रज रज लोटत फल लहे॥

२ तैलङ्ग देश मे कोई नवकोटि नारायण बडे धनिक हो गए है। इन्हें वहा के लोग एक अवतार मानते हैं और इनके विषय मे नाना किम्बदन्ती उस देश मे प्रसिद्ध हैं। इनका पूरा इतिहास Indian Antiquary मे छपा है।

नाम से प्रसिद्ध हो गया है और यावत् तैलङ्गी लोग इस कलश के दर्शनार्थ आते और हाथ जोड जाते है। यह बात काशी के यावत् यात्रावालो को विदित है, जहाँ उन्होने नवकोटि नारायण का नाम लिया, वह यहाँ ले आए।

बाबू हर्षचन्द्र एक वसीयतनामा लिख गए थे जिसके द्वारा कोठी के प्रबन्ध का भार बिञ्जीलाल को सौप गए थे। बाबू गोपालचन्द्र की अवस्था उस समय केवल ११ वष की थी, बिञ्जीलाल प्रबन्ध करने लगे परन्तु प्रबन्ध सतोषदायक न हो सका और उस समय जसी कुछ क्षति इस घर की हुई वह अकथनीय है। उस समय काशी के रईसो मे बडा मेल था, बाबू वृन्दावनदास (बाबू गोपालचन्द्र के मातामह) ने राय खिरोधर लाल की सहायता से कोठी मे ताला बन्द कर दिया और अदालत मे कोठी के प्रबन्ध के लिये दर्खास्त दी परन्तु वसीयतनामा के कारण ये लोग हार गए और प्रबन्ध बिञ्जीलाल ही के हाथ रहा इस समय बहुत कुछ हानि कोठी की हुई और और भी अधिक होती परन्तु बाबू गोपालचन्द्र की बुद्धि चमत्कारिणी थी उन्होने १३ ही वष की अवस्था मे अपना कार्य आप सँभाल लिया और फिर किसी की कुछ न गलने पाई।

—— o ——

बाबू गोपालचन्द्र

बाबू हर्षचन्द्र की बडी अवस्था हो गई और कोई पुत्र सन्तान न हुई। एक दिन यह श्री गिरिधर जी महाराज के पास बैठे हुए थे। महाराज ने पूछा बाबू, आज तुम उदास क्यो हो? लोगो ने कहा कि इनकी इतनी अवस्था हुई, परन्तु कोई सन्तान न हुई, वश कैसे चलैगा, इसी की चिन्ता इन्हे है। महाराज ने आज्ञा की कि तुम जी छोटा न करो। इसी वष तुम्हें पुत्र होगा। और ऐसा ही हुआ। मिती पौष कृष्ण १५, सवत् १८९० को कविकुलचूडामणि बाबू गोपालचन्द्र का जन्म हुआ। केवल श्री गिरिधर जी महाराज की कृपा से जन्म पाने और उनके चरणारविन्दो मे अटल भक्ति होने के कारण ही इन्होने कविता मे अपना नाम गिरिधरदास रक्खा था।

—— o ——

विवाह

बाबू हर्षचन्द्र को एक पुत्र के अतिरिक्त दो कन्या भी हुईं बडी का नाम यमुना बीबी (जन्म भादो ब० ८, स० १८९२) और छोटी गङ्गा बीबी (जन्म भादो ब० ४ स० १८९४)।

बाबू हर्षचन्द्र ने अपनी तीन सन्तानो मे से दो का विवाह अपने हाथो किया। पहिले यमुना बीबी का पीछे बाबू गोपालचन्द्र का। गङ्गा बीबी का विवाह बाबू गोपालचन्द्र के समय मे हुआ।

यमुना बीबी का विवाह काशी के प्रसिद्ध रईस, राजा पट्टनीमल बहादुर के पौत्र राय नृसिंहदास से हुआ। राजा पट्टनीमल, पटने के महाराज ख्यालीराम बहादुर के पौत्र थे। यह महाराज ख्यालीराम बिहार के नायब सूबेदार थे। इनका सविस्तार वृत्तान्त बङ्गाल और विहार के इतिहासो मे मिलता है। राजा पट्टनीमल ऐसे प्रतापी हुए कि ये छोटी ही अवस्था मे पिता से कुछ अप्रसन्न होकर चले आए और फिर लखनऊ गए। वहाँ उस समय अगरेज गवर्न्मेण्ट से और नवाब लखनऊ से सुलह की शर्तें तै हो रही थीं। परन्तु नवाब के चालाक अनुचर-वर्ग कभी कुछ कह देते, कभी कुछ, किसी तरह बात तै न होने पाती। निदान उन शर्तों को तै करने के लिये राजा पट्टनीमल नियत किए गए। इन्होने पहिले ही यह नियम किया कि हम जुबानी कोई बात न करेंगे, जो कुछ हो लिख कर तै हो। अब तो कोई कला उन लोगो की न चलने लगी। नवाब की ओर से राजा साहब के उस्ताद मौलवी साहब भेजे गए। राजा साहब ने उनका बडा आदर सत्कार किया और पूछा क्या आज्ञा है। मौलवी साहब ने एक लाख रुपए की अशर्फिएँ राजा साहब के आगे रख दीं और कहा कि आप नवाब पर रहम करें। हिन्दू मुसलमान तो एक ही हैं, ये फरङ्गी परदेसी हमारे कौन होते हैं। सुलहनामे मे नवाब के लाभ की ओर विशेष ध्यान रक्खें, अथवा आप इस काम से अलग ही हो जाँय। राजा साहब ने बहुत ही अदब के साथ निवेदन किया कि आप उस्ताद हैं, आपको उचित है कि यदि मै कोई अनुचित कार्य्य करूँ तो मुझे ताडना दें, न कि आप स्वय ऐसा उपदेश मुझे दें। यह सेवकधर्मविरुद्ध काम मुझसे कभी न होगा और देशी तथा विदेशी क्या, हमारे लिये तो जब विदेशी की सेवा स्वीकार कर ली,

तो फिर वह लाख देशियो से बढ़ कर हैं। निदान मौलवी साहब मुँह ऐसा मुँह लेकर चले आए। कहते हैं कि राजा साहब को आगरे के क़िले से बहुत धन मिला, जिसका ठीका उन्होने राय ज्योतिप्रसाद ठीकेदार के साझे मे लिया था। उन्होने मथुरा बृ दाबन मे दीघविष्णु का मन्दिर, शिव तालाब कुञ्ज आदि (See Growse's Mathura), आगरे मे शीशमहल, पीली कोठी आदि, दिल्ली मे आलीसान मकानात, काशी मे कीर्त्तिवासेश्वर का मन्दिर, हरतीर्थ, कमनाशा का पुल आदि सैकडो ही कीर्ति के अतिरिक्त एक करोड की सम्पत्ति छोडी, और इनका पुस्त-कालय तथा औषधालय भी बहुत प्रसिद्ध था। (भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित "पुरावृत्तसग्रह" देखो)। हम राजा साहब के उदार हृदय का उदाहरण दिखाने के लिये केवल एक घटना का उल्लेख करके प्रकृत विषय का वर्णन करेंगे। राजा साहब के मुख्तार बाबू बेनीप्रसाद राजा साहब के किसी कार्यवश कलकत्ते गए थे। वहाँ लाख रुपए पर दस २ रुपए की चिट्ठी पडती थी। एक चिट्ठी इन्होने भी राजा साहब के नाम से डलवाई और राजा साहब को लिख दिया राजा साहब ने उत्तर मे लिखा कि मै जूआ नहीं खेलता, यह तुमने ठीक नहीं किया, खैर अब तुम इ स रुपए को खच मे लिख दो। सयोगवश वह चिट्ठी राजा साहब के नामही निकल आई और लाख रुपया मिला। बाबू बेनीप्रसाद ने फिर राजा साहब को लिखा। राजा साहब ने उत्तर मे लिखा कि हम पहिले ही लिख चुके है कि हम जूआ नहीं खेलते, अतएव हम जूए का रुपया न लेंगे, तुम्हारा जो जी चाहे करो। उसी रुपए के कारण उक्त बाबू बेनीप्रसाद के वशधर काशी मे बडे गृह और जिमीदारी के स्वामी है। इस विवाह मे राजा साहब जीवित थे। सुना है कि बडी धूम का विवाह हुआ था और बडी ही शोभा हुई थी।

यमुना बीबी को कई सन्तति हुईं, परन्तु कोई भी न जीई। इससे अन्त मे राय प्रह्लाददास और उनकी कनिष्ठा भगिनी सुभद्रा बीबी अपने ननिहाल मे पले। राय प्रह्लाददास इस समय काशी मे आनरेरी मेजिस्ट्रेट है। ननिहाल के ससग से इनकी रुचि सस्कृत की ओर अधिक हुई और ये अच्छी सस्कृत जानते हैं। सुभद्रा बीबी का विवाह काशी के सुप्रसिद्ध धनिक साहो गोपालदास के वशज बाबू वैद्यनाथ प्र साद के साथ हुआ था। परन्तु अब वे दोनो ही पति पत्नी जीवित नहीं है। केवल उनके पुत्र बाबू यदुनाथ प्रसाद उनके उत्तराधिकारी हैं।

गङ्गा बीबी का विवाह प्रबन्धलेखक के पिता बाबू कल्यानदास के साथ हुआ।

यह विवाह बाबू गोपालचन्द्र जी ने किया था। इन्हें दो पुत्र और एक कन्या हुई। ज्येष्ठ पुत्र जीवनदास का बचपन ही मे परलोकवास हुआ। कन्या लक्ष्मीदेवी का विवाह बाबू दामोदर दास बी० ए० के साथ हुआ था जो कि नि सन्तान ही मर गईं। तीसरा पुत्र इस प्रबन्ध का लेखक है।

बाबू गोपालचन्द्र का विवाह दिल्ली के शाहजादो के दीवान राय खिरोधर लाल की कन्या पावती देवी से सवत १६०० मे हुआ। राय खिरोधर लाल का वश फारसीं मे विशेष विद्वान था और इन्हें वश परम्परागत राय की पदवी दिल्ली दर्बार से प्राप्त थी। राय साहब को एक ही कन्या थी। इ धर बाबू हर्षचन्द को एक ही पुत्र। विबाह बडी धूमधाम से हुआ। बाबू हर्षचन्द के चौखम्भास्थित घर मे राय खिरोधरलाल का शिवालास्थित भवन तीन मील से कम नहीं है, परन्तु बारात इतनी भारी निकली थी कि वर अपने घर ही था कि बारात का निशान समधी के घर पहुँचा, अर्थात् तीन मील लम्बी बारात थी। राय साहब ने भी ऐसी खातिर की थी कि कूओ मे चीनी के बोरे छुडवा दिए थे। यह विवाह काशी मे अब तक प्रसिद्ध है।

यह पार्वती देवी अत्यन्त ही सुशीला थीं। प्राचीन स्त्रिएँ इनके रूप और गुण की प्रशसा करते नहीं अघातीं। इन्हें चार सन्तति हुईं। मुकुन्दी बीबी, बाबू हरिश्चन्द्र, बाबू गोकुल चन्द्र और गोबिन्दी बीबी।

अपनी सन्तानो मे केवल बडी कन्या मुकुन्दी बीबी का बिवाह काशी के सुप्रसिद्ध रईस बाबू जानकीदास साहो के पुत्र बाबू महावीरप्रसाद के साथ, अपने सामने किया था।

बाबू हरिश्चन्द्र का विवाह शिवाले के रईस लाला गुलाब राय की कन्या श्री मती मन्नो देवी से, बाबू गोकुलचन्द्र का विवाह बाबू हनुमानदास की कन्या श्री मती मुकुन्दी देवी से और श्री मती गोविन्दी देवी का विवाह पटना के सुप्रसिद्ध नायव सूवा महाराज ख्यालीराम के वशधर राय राधाकृष्ण राय बहादुर के साथ हुआ। इनके पुत्र राय गोपीकृष्ण बहुतेही योग्य और होनहार थे। बी ए पास किया था। २५ ही वर्ष की छोटी अवस्था मे गवर्न्मेन्ट और प्रजा के परम प्रीति पात्र हो गए थे, परन्तु हाय! निर्दय काल ने इस खिलते हुए कमल को उखाड़ फेंका! इनकी असमय मृत्यु पर सारे पटने मे हाहाकार मच गया। लेफ्टिनेन्ट

गवनर बङ्गाल ने शोक प्रकाश किया और वृद्ध पिता राय राधाकृष्ण को आश्वासन देने के लिये स्वय आए थे।

राय खिरोधर लाल को श्री मती पार्वती देवी के अतिरिक्त और कोई सन्तान न थी इस लिये उनकी स्त्री श्री मती नन्ही देवी ने दौहित्र बाबू गोकुलचन्द्र को अपने पास रक्खा था और उन्ही को अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी किया।

श्रीमती पावती देवी के मरने पर इनका दूसरा विवाह उसी वष फाल्गुण सम्वत १६१४ मे बाबू रामनारायण की कन्या मोहन बीबी से हुआ। मोहन बीबी से इन्हें दो सन्तान हुए। प्रथम पुत्र हुआ। नाम उसका श्याम चन्द्र रक्खा गया था, परन्तु तीन ही महीने का होकर मर गया। द्वितीय कन्या हुई जो कि प्रसूतिगृह मे ही मर गई। मोहन बीबी की मृत्यु सम्वत १६३८ के माघ कृष्ण १० को हुई।

बाबू हर्षचन्द्र का परलोकवास ४२ वष की अवस्था मे सम्वत १६०१ मिती वैसाख बदी १३, को हुआ। बाबू गोपालचन्द्र की अवस्था उस समय केवल ११ वष की ही थी। कविता की कमनीय कान्ति का अनुराग बाबू गोपालचन्द्र को बाल्यावस्था ही से था। इसी से आप लोग समझ लीजिए कि १३ ही वर्ष की अवस्था मे सम्वत १६०३ मे वृहत् बाल्मीकीय रामायण का भाषा छन्दोवद्ध अनुवाद इन्होने किया, परन्तु दुर्भाग्यवश अब इस अनुवाद का पता कहीं नहीं लगता है। केवल अस्तित्व के प्रमाण के लिये ही मानो "बाला बोधिनी" मे इसका एक अश छपा है। हिन्दी और सस्कृत की कविता इनकी प्रसिद्ध है। परन्तु कभी कभी उर्दू की भी कविता करते थे। उन्होने एक "ग़ज़ल" मे लिखा है।

"दास गिरिधर तुम फकत हिन्दी पढे थे खूबसी,
किस लिये उर्दू के शायर मे गिने जाने लगे॥"

—— o ——

शिक्षा और चरित्र

पाठक स्वय विचार सकते हैं कि इतने बडे धनिक के एक मात्र पुत्र सन्तान का लालन पालन कितने लाड चाव से हुआ होगा, और हमारे देश की स्थिति के अनुसार इनकी सी अवस्था के बालक, जिनके पिता भी बचपन ही में परलोकगामी

हुए हो, कसे सुशिक्षित और सच्चरित्र हो सकते है। परन्तु आश्चय है कि इनके विषय मे सब विपरीत ही हुआ। इनका सा विद्वान और सच्चरित्र ढूढने से कम मिलेगा। इसका कारण चाहे भगवत कृपा समझिए या ऋषि तुल्य गुरु श्री गोस्वामी गिरधर जी महाराज का आशीर्वाद, सहवास और शिक्षा। जो कुछ हो, इनकी प्रतिभा विलक्षण थी। नियम पूर्वक शिक्षा न होने पर भी सस्कृत और भाषा के ये ऐसे विद्वान थे कि पण्डित लोग इनका आदर करते थे। चरित्र इनका ऐसा निमल था कि काशी के लोग इन्हें बहुत ही भक्तिभाव से देखते थे, यहाँ तक कि प्रसिद्ध कमिश्नर मिस्टर गबिन्स ने अपनी रिपोट मे लिखा था कि "बाबू गोपालचन्द्र परकटा फरिश्ता है"। सन् ५७ के बलबे मे रेजिडेन्सी के चाँदी सोने के असबाब आसा बल्लम आदि इन्हीं की कोठी मे रक्खे गए थे। क्रोध तो इन्हें कभी आता ही न था, पर जव कोई गोपालमन्दिर आदि धम सम्बन्धी निन्दा करता तो बिगड जाते। रामनृसिंहदास प्राय चिढाया करते थे। इनके बिचार कैसे थे, यह पाठक पूज्य भारतेन्दुजी के निम्न लिखित वाक्यो से, जो उन्होने 'नाटक' नामक ग्रन्थ मे लिखे हैं जान सकते है। "बिशुद्ध नाटक रीति से पात्रप्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है। मेरे पिता ने विना अगरेजी शिक्षा पाए इधर क्यो दृष्टि दी, यह बात आश्चय की नहीं है। उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अँगरेजी की शिक्षा के भी उनको वर्तमान समय का स्वरूप भली भाँति विदित था। पहिले तो धर्म ही के विषय मे वे इतने परिष्कृत थे कि बैष्णव व्रत पूर्ण के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उन्होंने उठा दिया था। टामसन साहब लेफ्टिनेंट गवनर के समय काशी मे पहिला लडकियों का स्कूल हुआ तो हमारी बडी बहिन को इन्होने उस स्कूल मे प्रकाश्य रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय मे बहुत कठिन था, क्योकि इसमे बडी ही लोकनिन्दा थी। हम लोगो को अगरेजी शिक्षा दी। सिद्धान्त यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है। केवल २७ वर्ष की अवस्था मे मेरे पिता ने देहत्याग किया, किन्तु इसी अवस्था मे ४० ग्रन्थ बनाए।" विद्या की इन्हें ऐसी चि थी कि बहुत धन व्यय करके बृहत सरस्वती भवन का सङ्ग्रह किया था जिसमे बडी अलभ्य और अमूल्य ग्रन्थों का सग्रह है। डाक्तर राजेन्द्र लाल मित्र इस पुस्तकालय का मूल्य एक लाख रुपया दिलवाते थे। इन ग्रन्थो का पहाड बनाकर उस पर सर-

स्वती देवी की मूर्ति स्थापन करके आश्विन शुक्ला सप्तमी से तीन दिन तक उत्सव करते थे जो अब तक होता है ।

अपने चौखम्भास्थित भवन मे इन्होने एक पाईं बाग़ श्री ठाकुर जी के निमित्त बहुत सुन्दर बनवाया ।

बाग़ रामकटोरा के सामने सडक पर रामकटोरा तालाब का जीर्णोद्धार बहुत रुपया लगाकर किया था। यह तालाब चारो ओर से पक्का बँधा है। पहिले इसमे कटोरे की तरह पानी भरा रहता था पर अब म्यूनिसिपलिटी की कृपा से नल ऊँची हो जाने से पानी कम आता है। इस तालाब पर एक मन्दिर बनवाकर सब देवताओ की मूर्ति स्थापन करने की इच्छा थी पर पूरी न हो सकी। मूर्तिये अत्यतही सुन्दर बनवाया था जो अब तक रक्खी है।

बाग़ का भी इन्हें शौक़ था। सन् १८६४ मे यहाँ एक ऐग्रीकल्चरल शो (कृषि प्रदर्शिनी) हुई थी उसमे इन्हें इनाम और उत्तम सर्टिफिकेट मिली थी।

—— ० ——

दिनचर्या

व्यसन इन्हें भगवत्सेवा या कविता के अतिरिक्त कोई भी न था। जाडे के दिनो मे सबेरे तीन बजे से उठते और मन्दिर के भृत्यो को बुलवाते, और गर्मी के दिनो मे पाँच बजे शौचादि से निवृत्त होकर कुछ कविता लिखते। शौच जाते समय क़लम दावात काग़ज़ बाहर रक्खा रहता। यदि कुछ ध्यान आजाता तो शौच से निकलते ही हाथ धोकर लिख लेते, तब दतुयन करते। कभी घर मे श्री ठाकुर जी की सेवा मे स्नान करने के पहिले श्री मुकुन्दराय जी के दर्शन को तामजाम पर बैठ कर जाते और कभी अपने यहाँ शृङ्गार की सेवा मे पहुँच कर तब जाते। घर मे भी ठाकुर जी की शृङ्गार की सेवा से निकल कर कविता लिखते, लेखक चार पाँच बैठे रहते और उनको लिखवाते, राजभोग आरती करके दस ग्यारह बजे श्री ठाकुर जी की महाप्रसादी रसोई खाते। भोजनोपरान्त कुछ देर दर्बार करते थे। और घरके काम काज देखते। फिर दोपहर को कुछ देर सोते। तीसरे पहर को फिर दर्बार लगता। कविकोविदो का सत्कार करते, कविता की

चर्चा रहती, सध्या को हवा खाने जाते, गाडी तक तामजाम पर जाते। रामकटोरा वाले बाग मे भाँग पीते। शौच होकर घर आते। हवा खाकर आने पर फिर दर्बार लगता। रात्रि को दस बजे तक भोजन करके सोते। सबेरे बिना कम से कम पाँच पद बनाए भोजन न करते। सध्या को सुगन्धित पुष्प का गजरा या गुच्छा पास मे अवश्य रहता। रात्रिको पलग के पास एक चौकी पर कागज, क़लम, दावात रहती, शमेदान रहता, एक चौकी पर पानदान और इत्रदान रहता। रात्रि को कविता कुछ अवश्य लिखते। स्वभाव हँसोड बहुत था, इसलिये जब बैठते, हँसी दिल्लगी होती, परन्तु दर्बार के समय नहीं। प्रति एकादशी को जागरण करते। बडा उत्सव करते थे।

इनकी एक मौसी थीं, वह स्वभाव की चिडचिडही अधिक थीं और इन्हीं के यहाँ रहती थीं। इन्हें ये प्राय चिढाया करते थे इन्हें चिढाने के लिये यह कविता बनाया था —

घडी चार एक रात रहे से उठी घडी चार एक गङ्ग नहाइत है।
घडी चार एक पूजा पाठ करी घडी चार एक मन्दिर जाइत है।
घडी चार एक बैठ बिताइत है घडी चार एक कलह मचाइत है।
बलि जाइत है ओहि साइन की फिर जाइत है फिर आइत है।

—— ० ——

कवियो का आदर

इनके दर्बार मे कवियो का बडा आदर होता था। इनके यहाँ से कोई कवि विमुख न फिरता। यद्यपि इनके दर्बारी कवियो का पूरा वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है, तथापि दो तीन कवियो का जो पता लगा है, वह प्रकाशित किया जाता है।

एक कवि जी को (इनका नाम कदाचित ईश्वर कवि था) एक चश्मे की आवश्यकता थी। उन्हो ने एक कबिता बना कर दिया। उन्हें तुरन्त चश्मा मिला। उस कवित्त का अन्तिम चरण यह है—

"खसमामुखो के मुख भसमा[1] लगाइबे को एहो धनाधीश हमे चाहत एक चसमा" ।

एक कवि जी की यह कविता उपलब्ध हुई है—

परझूलिया छन्द—"बठे है बिराजो राज मन्दिर मो कियो साज सर्म को साज आसय आजिम अचल है । दविता को रहे अरि सविता को सागर मो कविता कमलता से सचिता सबल है । कहै कविराज कर जोरे प्रभू गोपालचन्द्र ए बचन बिचारो मेरो बिद्या की विमल है । बगर बडाई कोरु सर सोलताई को सुभाजन भलाई को सभाजन सकल है ।। १ ।। दोहा ।। जहाँ अधिक उपमेव है छीन होत उपमान । अलकार वितरेक को किज्जत तहाँ बिनान ।। जथा । बुध सो बिरोधे सकल कलानिधि देखो दु पश्य निर्मल सो न आदर सहै । गुरु से ईस मै गुरुज्ञान मे विलोकियतु कबिता अनेक कबिताई को सरस है ।। द्वार आगे हैं राजत गजराज फेरियत रीझि रीझि दीजियत पायन परससु (स ?) है । कहैं सभू महाराज गोपालचन्द्र जू धरमराज की सभा तें सभा रावरी सरस है ।

पडित हरिचरण जी अपने सस्कृत पत्र मे लिखते हैं —"यशोदा गर्भजे देवि चतुर्वर्ग फल प्रदे । श्री मद्गोपालचन्द्राख्य श्चिरायुष्क्रिय तान्त्वया' ।। सावर्णिरि त्याद्यारभ्य सावर्णिर्भर्भ विता मनु । इत्यन्त शत सख्यात पाठ सकल्प्य दीयत्ताम्" ।।

सुप्रसिद्ध कवि सरदार ने इनके बलिराम कथामृत के आदि से "स्तुति प्रकाश" को लेकर उस पर टीका लिखी है । उसमे उक्त कवि ने इनके विषय मे जो कुछ लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं ।

छप्पै

"बिमल बुद्धि कुल बैस बनारस वास सुहावन ।
फतेचद आनन्दकन्द जस चन्द बढावन ।।
हरषचन्द ता नन्द मन्द बैरी मुख कीने ।
तासुत श्री गोपालचन्द कविता रस भीने ।।
दश कथा अमृत बलराम मैं अस्तुति उह भूषन दियो ।
तेहि देखि सुबुध सरदार कबि बुधि समान टीका कियो ।।

---

१ मुखरा सरस्वती के मुख मे भस्म लगाने के लिये अर्थात कविता लिखने के लिये ।

दोहा

लोक बिभू ग्रह सभु सुत रद सुचि भादव मास ।
कृष्णजन्म तिथि दिन कियो पूरन तिलक बिलास ।"

इस ग्रथ का कुछ अश भी हम यहा पर उद्धत करते ह

"स्तुति प्रकाशिका" कवि सरदार कृत टीका आदि टीका का ।

श्री गोपीजन बल्लभायनम ।दोहा। सुमन हरष धारे सुमन बरषत सुमन अपार । नन्द नन्दन आनन्द भर वन्दत कवि सरदार ।।१।। गिरिधर गिरिधरदास को कियो सुजस ससि रूप । तिहि तकि कवि सरदार मन बाढो सिन्धु अनूप ।। २ ।। कुवुधि भूमि लोपित ललित उमग्यो वारि विचार ।। करन लग्यो रचना तिलक उर धरि पवन कुमार ।।३।। पवन पुत्र पावन परम पालक जन पन पूर । अरि घालन सालन सदा दस सिर उर सस सूर ।। ४ ।।

मूल । प्रभु तव वदन चन्द सम अमल अमन्द ।
तमहारी रतिकारी करत अनन्द ।।

टीका प्रभु इति । उक्ति ब्रह्मा की है । प्रभु तुमारो बदन चन्द सम अमल अमद तम हरन रति करन प्रीति करन आनन्द करन है । वदन उपमेय चन्द उपमान । सम वाचक । अमल । आदिक साधारन धम । तातें पूर्णोपमालङ्कार । प्रश्न । साधारन धर्म का कहावै । जो उपमान उपमेय दोउन मे होय । सो अमलता और अमन्दता चन्द्रमा मे दोऊ नाहीं यातें उपमेय मे अधिकता आए तें बितरेक काहे न होइ । उत्तर ।। जब छीर समुद्र तें चन्द्रमा निकरो ता समय अमल अमन्द रहो । यातें इहाँ पूरन उपमा होइ है ताको लच्छन । भारती भूषने । ।दोहा। उपमानरू उपमेय जहँ उपमा वाचक होइ । सह साधारन धर्म के पूरन उपमा सोइ ।। १ ।। जथा । मुख सुखकर निसिकर सरिस सफरी से चल नैन । छीन लङ्क हरिलङ्क सी ठाढी अैनों अैन ।। मुख उपमेय सुखकर धम निसिकर उपमान । सरिस बाचक । पुन सफरी उपमान । से । बाचक । चल धर्म । नैन उपमेय । पुन छीन धर्म लँक उपमेय हरिलङ्क उपमान । सो वाचक याते पूर्णोपमा । तहाँ प्रश्न कै ब्रह्मा ने अन्यगुन छोडि अलकार मैं स्तुति करी । ताको अभिप्राय । उत्तर । कसादिकन के त्रासतें अन्य ठाँव दूषन भरि गए एक प्रभु

के निकट भूषन रहो। अलँकार प्रियो विष्णु यह पुरान मे लिखते हैं। सो उनको प्रसन्न करनो है यासो अलकारमय स्तुति करी यद्वा। आगे व्रज मे अवतार लेके शृगार रस प्रधान लीला करनी है तासो भूषन अपन करत है। पुन प्रश्न। पूरन उपमा अलकार तें काहे क्रम बाँधो। उत्तर। षोडश कला परिपूण अवतार की इच्छा। अथातरे।

दोहा। भौहै कुटिल कमान सी सर से पैंने नैन।
वेधत व्रज वालान ही बशीधर दिन रैन॥

इत्यादि जानिए।"

पूज्य भारतेन्दु जी ने इनके मुख्य सभासदो के नाम एक याददाश्त मे इस प्रकार लिखे है--

पडित ईश्वरदत्त जी (ईश्वर कवि), सरदार कवि, गोस्वामी दीनदयाल गिरि, कन्हैयालाल लेखक, पडित लक्ष्मीशङ्कर व्यास, बाबू कल्यानदास, माधोराम जी गौड, गुलाबराम नागर और बालकृष्ण दास टकसाली।

--- o ---

साधु महात्माओ का समागम

इनपर उस समय के साधु महात्माओ की भी बडी कृपा रहती थी और ये भी सदा उन लोगो की सेवा शुश्रूषा मे तत्पर रहते थे। एक पुर्जा उस समय का मुझे मिला है जो अविकल प्रकाशित किया जाता है--

"राम किंकर जी अयोध्या के महन्त जिनका नाम जाहिर है आपने भी सुना होगा, बडे महात्मा है सो राधिकादास जी के स्थान पर तीन चार रोज से टिके हैं अभी उनके साथ सहर मे गए है और चाहिए कि दो तीन घडी मे आप की भेट को आवें क्योकि राधिका दास जी की जुबानी आपके गुन सुने और सहस्र नाम की पोथी देखी उत्कठा मालूम होती है और है कैसे 'कौपीनवन्त खलुभाग्यवन्त'।

राधिकादासजी, रामकिंकर जी, तुलाराम जी, भागवतदास जी आदि उस समय के बडे प्रसिद्ध महात्मा गिने जाते थे। इन लोगो से इनसे बहुत स्नेह था, वरञ्च इन लोगो से भगवत् सम्बन्धी चुहलबाजी भी होती थी। एक दिन इन्हीं

मे से किसी महात्मा से इन्होने कहा कि "भगवान श्री कृष्णचन्द्र मे भगवान श्री रामचन्द्र से दो कला अधिक थीं, अर्थात् इनमे सोलहो कला थीं ।" उक्त महानु-भाव ने उत्तर दिया "जी हॉ, चोरी और जारी" । कई महात्माओ की कथा भी धूमधाम से हुई थी ।

—— ० ——

बुढवामगल

यह हम ऊपर लिख आए हैं कि बाबू हर्षचन्द्र के समय से बुढवामङ्गल का कच्छा इनके यहॉ बहुत तयारी के साथ पटता था और बिरादरी मे नेवता फिरता था, तथा गुलाबी पगडी दुपट्टा पहिर कर यावत् बिरादरी और नौकर आदि कच्छे पर आते थे । वैसी ही तयारी से यह मेला बाबू गोपालचन्द्र के समय मे भी होता था । एक वर्ष कच्छे के साथ के कटर पर सध्या करने के लिये बाबू साहब आए थे और कटर के भीतर सध्या करते थे । छत पर और सब लोग बैठ थे । सध्या करके ऊपर आए, सब लोग ताजीम के लिये खडे हो गए । इस हलचल मे नाव उलट गई और सब लोग अथाह जल मे डूब गए । उस समय उसी नाव पर एक नौकर की गोद मे बडी कन्या मुकुन्दी बीबी भी थीं । यह दुर्घटना चौसट्ठी घाट पर हुई थी । इस घाट पर चतुःषष्टि देवी का मन्दिर है और होली के दूसरे दिन यहाँ धुरहडी को बहुत बडा मेला लगता हैं ।ई स घाट पर अथाह जल है और रामनगर के क़िले से टकराकर पानी यहाँ आकर लगता है, इससे यहाँ पानी का बडा बेग रहता है, उस पर इनको तैरने भी नहीं आता था—और भी आपत्ति यह कि लडके साथ मे । त्राहि भगवन, उस समय क्या बीती होगी ! परन्तु रक्षा करने वाले की बॉह बडी लम्बी हैं । उसने सभो को ऐसा उबारा कि प्राणियो की कौन कहे, किसी पदार्थ को भी हानि न होने पाई । बाबू गोपालचन्द्र मेरे पिता बाबू कल्याण-दास से लिपट गए । यह बडे घबराए कि अब दोनो यहीं रहे । परन्तु साहस करके इन्होने उनको अपने शरीर से छुडाकर ऊपर की ओर लोकाया । सौभाग्य-वश नौकाएँ वहाँ पहुँच गई थीं, लोगो ने हाथोहाथ उठा लिया । मुकुन्दी बीबी अपनी सोने की सिकरी को हाथ से पकडे नौकर के गले से चिपटी रहीं । निदान सब लोग निकल आए, यहॉ तक कि जितने पदार्थ डूबे थे वे सब भी निकल आए ।

एक सोने की घडी, चाँदी का चश्मे का खाना और बाँह पर बाँधने का एक चाँदी का यन्त्र अब तक उस समय का जल मे से निकला हुआ रक्खा है । कविवर गोपालचन्द्र की कवित्वशक्ति उस समय भी स्थगित न हुई और उन्होने उसी अवस्था मे एक पद बनाया अन्तिम पद उसका यह है--

"गिरिधर दास उबारि दिखायो
भवसागर को नमूना"

चार दिन बुढवामङ्गल के अतिरिक्त, होली और अपने तथा पुत्रो के जन्मोत्सव के दिन बडा जलसा और बिरादरी की जेवनार कराते थे, कि जिसकी शोभा देखनेवाले अब तक भी वर्तमान है, और कहते है वैसी शोभा अब अच्छे २ विवाह की महफिलो मे भी नहीं दिखाई देती ।

एक बेर ये हाथी से भी गिरे थे और उसी दिन उस हाथी को काशिराज की भेंट कर दिया ।

--- ० ---

गयायात्रा

बचपन से श्रीठाकुर जी की सेवा और दर्शन का ऐसा अनुराग था कि उन्हें छोड कर कभी कहीं यात्रा का विचार नहीं करते । केवल पाँच वर्ष की अवस्था मे मुण्डन कराने के लिये पिता के साथ मथुरा जी गए थे, तथा श्रीदाऊ जी के मन्दिर मे मुण्डन हुआ था और वहाँ से लौट कर श्रीवैद्यनाथ जी गए थे, वहाँ चोटी उतरी थी । स्वतन्त्र होने पर कभी कभी चरणाद्रि श्री महाप्रभु जी के दर्शन को जाते, परन्तु पहिले दिन जाते, दूसरे दिन लौट आते । केवल बाबू हरिश्चन्द्र के जन्मोपरान्त सवत १९०७ मे पितृऋण चुकाने के लिये गया गए थे । गया जाने के लिये बडी तयारियाँ हुईं । महीनो पहिले से सब पुराणो, धर्मशास्त्रो से छाँट कर एक सग्रह बनवाया गया । रेल थी नहीं, डाँक का प्रबन्ध किया गया । सैकडो आदमियों का साथ था । पन्द्रह दिन की गया का विचार करके गए, परन्तु वहाँ जाने पर प्रभुवियोग ने विकल किया । दिन रात रोवैं, भोजन न करैं, सेवा का स्मरण अहर्निशि रहै । निदान किसी किसी तरह तीन दिन की गया करके भागे

रात दिन बराबर चले आए और आकर श्रीचरणदर्शन से अपने को तृप्त किया। इस यात्रा मे मेरी माता साथ थीं।

—— o ——

ग्रन्थ

इनका सबसे पहिला ग्रन्थ वाल्मीकि-रामायण है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। परन्तु खेद के साथ कहना पडता है कि इनके ग्रन्थ ऐसे अस्त व्यस्त हो गए हैं कि जिनका कुछ पता ही नहीं लगता। केवल पूज्य भारतेन्दु जी के इस दोहे से —

"जिन श्रीगिरिधरदास कवि रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्रीहरिचन्द को को न नवावै सीस"॥

इतना पता लगता है कि उन्होने चालीस ग्रन्थ बनाए थे, परन्तु उनके नाम या अस्तित्व का पता नहीं लगता।

पूज्य भारतेन्दु जी ने अपनी याददाश्त मे इतने ग्रन्थो के नाम लिखे हैं—
१ वाल्मीकि रामायण (सातो काण्ड छन्द मे अनुवाद)। २ गर्भसंहिता। ३ भाषा एकादशी की चौबीसो कथा। ४ एकादशी की कथा। ५ छन्दार्णव। ६ मत्स्यकथामृत। ७ कच्छपकथामृत। ८ नृसिंहकथामृत। ९ बावन-कथामृत। १० परशुरामकथामृत। ११ रामकथामृत। १२ बलरामकथामृत। १३ बुद्धकथामृत। १४ कल्किकथामृत। १५ भाषा व्याकरण। १६ नीति। १७ जरासन्धबध महाकाव्य। १८ नहुषनाटक। १९ भारतीभूषण। २० अद्भुत रामायण। २१ लक्ष्मी नखसिख। २२ रसरत्नाकर। २३ वार्ता संस्कृत। २४ ककारादि सहस्रनाम। २५ गयायात्रा। २६ गयाष्टक। २७ द्वादश दल-कमल। २८ कीर्तन की पुस्तक "स्तुति पञ्चाशिका" कवि सरदार कृत टीका का वर्णन ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित संस्कृत स्तोत्रो पर संस्कृत टीका कवि लक्ष्मीराम कृत मुझे मिली हैं—

१ सङ्कर्षणाष्टक। २ दनुजारिस्तोत्र। ३ वाराह स्तोत्र। ४ शिव स्तोत्र। ५ श्री गोपाल स्तोत्र। ६ भगवत्स्तोत्र। ७ श्री रामस्तोत्र। ८ श्री राधास्तोत्र। ९ रामाष्टक। १० कालियकालाष्टक। इनके ग्रन्थों

के लुप्त होने का विशेष कारण यह जान पडता है कि इनके अक्षर अच्छे नहीं होते थे, इसलिये वे स्वय पुर्जों पर लिख कर सुन्दर अक्षरो मे नक़ल लिखवाते और सुन्दर चित्र बनवाते थे। तब मूल कापी का कुछ भी यत्न न होता और ग्रन्थ का शत्रु वही उसका चित्र होता। मैने वाल्मीकि-रामायण और गर्गसहिता की सचित्र कापी बचपन मे देखी थी, परन्तु उसे कोई महाशय पूज्य भारतेन्दु जी से ले गए और फिर उन्होने उसे न लौटाया। कीतन की पुस्तक मुन्शी नवलकिशोर के प्रेस से खो गई और 'नहुषनाटक" का कुछ भाग "कविवचनसुधा" प्रथम भाग मे छपकर लुप्त हो गया। खेद है कि पूज्य भारतेन्दु जी की असावधानी ने इनको बहुत हानि पहुँचाई।

दशावतार कथामृत मानो उन्होने भाषा मे पुराण बनाया था। पुराण के सब लक्षण इसमे हैं। बलिरामकथामृत बहुत ही भारी ग्रन्थ है। वह ग्रन्थ स० १६०६ से १६०८ तक मे पूरा हुआ था। भारतीभूषण अलङ्कार का अद्भुत ग्रन्थ है। अच्छे अच्छे कवि अपने विद्यार्थियो को यह ग्रन्थ पढाते हैं। नहुषनाटक भाषा का पहिला नाटक है। भाषा व्याकरण-छन्दोबद्ध भाषा का व्याकरण अत्यन्त सुगम और सरल ग्रन्थ है। जरासन्धबध महाकाव्य और रसरत्नाकर अधूरे ही रह गए। इन दोनो को पूज्य भारतेन्दु जी पूरा करना चाहते थे, परन्तु खेद कि वैसा ही रह गया। जरासन्धबध महाकाव्य बहुत ही पाण्डित्य पूर्ण वीररसप्रधान ग्रन्थ है। भाषा मे यह ग्रन्थ एम० ए० का कोर्स होने योग्य है। इसकी तुलना के भाषा मे विरले ही ग्रन्थ मिलेंगे। इस ढङ्ग का ग्रन्थ केवल कविवर केशवदास कृत रामचन्द्रिका ही है।

इनकी कविता की प्रशसा फ्रास देश के प्रसिद्ध विद्वान गार्सिनदी तासी ने अपने ग्रन्थ मे की है और डाक्टर ग्रिअर्सन तथा बाबू शिवसिंह ने (शिवसिंह सरोज मे) इनकी विद्वत्ता को मुक्त कठ से स्वीकार किया है।

—— ० ——

कविता

इनकी कविता पाण्डित्यपूर्ण होती थी। इन्हें अलङ्कारपूर्ण श्लेष, जमक इत्यादि कविता पर विशेष रुचि थी। परन्तु नीति शृङ्गार और शान्ति रस की

कविता इनकी सरल और सरस भी अत्यन्त ही होती थी। हम उदाहरण के लिये कुछ कविताएँ यहाँ उद्धृत करते है—

सवैया—सब केसब केसब केसव के हित के गज सोहते सोभा अपार हैं। जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन सर्लहि सीस प्रहार हैं॥ गिरिधारन धारन सो पद के जल धारन लै बसुधारन फार हैं अरि वारन बारन बारन पै सुर बारन बारन बारन वार हैं॥ १॥

मुकरी—अति सरसत परसत उरज उर लगि करत विहार।
चिन्ह सहित तन को करत क्यो सखि हरि नहिं हार॥१॥

सख्यालङ्कार—गुरुन को शिष्यन पात्र भूमि देवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सो। सुत को सन्यासिन को वर जिजमानन को सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सो॥ सत्रुन को मित्रन को पित्रन को जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सो। गिरिधर दास दासै स्वामी को अघी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सो॥

यथासख्य—असतसङ्ग, सतसङ्ग, गुन, गङ्ग, जङ्ग कहँ देखि।
भजहु, सहजु, सीखहु सदा, मज्जहु लरहु विसेखि॥

अविकृतशब्द श्लेष मूल वक्रोक्ति—मानि कही रमनी सुलै हौं परसत तुव पाय। मानिक हार मनी सु लै देहु पतुरियै जाय॥ १॥ मानत जोगहि सुमति बर पुनि पुनि होति न देह। जोगी मानहिं जोग को नहि हम करत सनेह॥ २॥

स्वभावोक्ति—गौनो करि गौनो चहत पिय विदेस बस काजु। सासु पासु जोहत खरी आँखि आँसु उर लाजु॥ १॥

समस्या पूर्ति—जीवन यै सगरे जग को हमतें सब पाप औ ताप की हानी। देवन को अरु पितृन को नरको जडको हमहीं सुखदानी॥ जो हम ऐसो कियो तेहि नीच महा सठको मति लै अघसानी। हाय विधाता महा कपटी इहि कारन कूप मैं डोलत पानी॥ १॥ बातन क्यो समुझावति हौ मोहि मैं तुमरो गुन जानति राधे। प्रीति नई गिरिधारन सो भई कुंज मैं रीति के कारन साधे। घूघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै आधे। नेह न गोयो रहै सखि लाज सो कैसे रहै जल जाल के बाँधे॥ २॥

जरासन्धबध महाकाव्य से—चले राम अभिराम राम इष धनु टँकारत। दीनबन्धु हरिबन्धु सिन्धु सम बल बिस्तारत॥ जाके दशसत सिरन मध्य इक सिर पर धरनी। लसति जथा गज सीस स्वल्प सरसप सित बरनी॥ विक्रम अनत अतक अधिक सुजस अनत अनत मति। परताप अनत अनत गुन लसे अनत अनत गति॥ १॥

पद—प्रभु तुम सकल गुन के खानि। हौं पतित तुव सरन आयो पतित पावन जानि॥ कब कृपा करिहौ कृपानिधि पतितता पहिचानि। दास गिरिधर करत बिनती नाम निश्चै आनि॥ १॥

खडी बोली का पद—जाग गया तब सोना क्या रे। जो नर तन देवन को दुलभ सो पाया अब रोना क्या रे॥ ठाकुर से कर नेह अपाना इन्द्रिन के सुख होना क्या रे। जब बैराग ज्ञान उर आया तब चाँदी औ सोना क्या रे॥ दारा सुपन सदन मे पड के भार सबो का ढोना क्या रे। हीरा हाथ अमोलक पाया काँच भाव मे खोना क्या रे॥ दाता जो मुख माँगा देवे तब कौडी भर दोना क्या रे। गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे॥ १॥

विदुर नीति से—पावक, बरी, रोग, रिन सेसहु राखिय नाहिं। ए थोडे हू बढहिं पुनि महाजतन सो जाहि॥ १॥

बाल्मीकिरामायण से—पति देवत कहि नारि कहँ और आसरो नाहिं। सर्ग सिढी जानहु यही वेद पुरान कहाहि॥ १॥

नीति के छप्पय (स्वहस्त लिखित एक पुर्जे से)—धिक नरेस बिनु देस देस धिक जहँ न धरम रुचि। रुचि धिक सत्य विहीन सत्य धिक बिनु बिचार सुचि॥ धिक बिचार बिनु समय समय धिक बिना भजन के। भजनहु धिक बिनु लगन लगन धिक लालच मन के॥ मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति। धिक ज्ञान भगति बिनु भगति धिक नहिं गिरिधर पर प्रेम अति॥१॥

मुझे खेद है कि न तो मैने इनके सब ग्रन्थो को पढ़ा है और न इतना अवसर मिला कि उत्तमोत्तम कविता छाँटता। यतकिञ्चित उदाहरण के लिये उद्धृत कर दिया और चित्रकाव्य को छापने की कठिनता से सवथा ही छोड दिया है॥

धर्म विश्वास—वैष्णव धर्म पर इन्हें ऐसा अटल विश्वास था कि और सब देव देवियों की पूजा अपने यहाँ से उठा दी थी। भारतेंदु जी ने लिखा है कि "भेटि देव

देवी सकल छोडि कठिन कुल रीति । थाप्यो गृह मे प्रेम जिन प्रगट कृष्ण पद प्रीति ॥"
मरने के समय भी घर का कोई सोच न था केवल श्वास भर कर ठाकुर जी के सामने यही कहा था कि "दादा ! तुम्हें बडा कष्ट होगा ॥"

— o —

रोग और मृत्यु

बचपन से लोगो ने उन्हें भङ्ग पीने का दुर्व्यसन लगा दिया था । वह अति को पहुँच गया था ऐसी गाढी भाँग पीते थे कि जिसमे सीक खडी हो जाय । और अन्त मे इसी के कारण उन्हें जलोदर रोग हो गया । बहुत कुछ चिकित्सा हुई, परन्तु कोई फल न हुआ । कोठी की ताली और प्रबन्ध राय नृसिंहदास को सौंप गए थे और उन्होने बाबू गोकुलच द्र की नाबालगी तक कोठी को सँभाला था । स० १६१७ की बैसाख सु० ७ को अ त समय आ उपस्थित हुआ । पूज्य भारतेन्दु जी और उनके छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र जी को सीतला जी का प्रकोप हुआ था । दोनो पुत्रो को बुलाकर देखकर बिदा किया । इन लोगो के हटते ही प्राण पखेरू ने पयान किया । चारो ओर अन्धकार छा गया, हाहाकार मच गया । पूज्य भारतेन्दु जी कहते थे कि "वह मूर्ति अब तक मेरी आँखो के सामने विराजमान है । तिलक लगाए बडे तकिए के सहारे बैठे थे । दिव्य कान्ति से मुखमण्डल दीप्त था, मुख प्रसन्न था, देखने से कोई रोग नहीं प्रतीत होता था । हम लोगो को देखकर कहा कि सीतला ने बाग मोड दी । अच्छा अब ले जाव ।" इनकी अन्त्येष्टि क्रिया एक सम्बन्धी (नन्हूसाव) ने की थी ।

— o —

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म

— ० —

मि० भाद्रपद शुक्ल ७ (ऋषि सप्तमी) स० १९०७ ता ९ दिसम्बर सन १८५० को हुआ, जिस समय इनके पूज्य पिता का बियोग हुआ उस समय इनकी अवस्था केवल ९ वष की थी, परन्तु "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस लोकोक्ति के अनुसार बालक हरिश्चन्द्र ने पाँच छ वर्ष की अवस्था ही मे अपनी चमत्कारिणी बुद्धि से अपने कविचूडामणि पिता को चमत्कृत कर दिया था। पिता (गोपालचन्द्र) बलिराम-कथामृत की रचना कर रहे थे, बालक (हरिश्चन्द्र) खेलते खेलते पास आ बैठे, बोले हम भी कविता बनावेंगे। पिता ने आश्चयपूर्वक कहा तुम्हें उचित तो यही है। उस समय बाणासुर-बध का प्रसग लिखा जा रहा था। बाल-कबि ने तुरन्त यह दोहा बनाया —

लै ब्योंडा ठाढे भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
वानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान॥

पिता ने प्रेमगद्गद होकर प्यारे पुत्र को कण्ठ लगा लिया और अपने होनहार पुत्र की कविता को अपने ग्रथ मे सादर स्थान दिया और आशीर्वाद दिया "तू हमारे नाम को बढावैगा"। हाय! कहाँ है उनकी आत्मा! वह आकर देखै कि उनके पुत्र ने उनका ही नहीं वरन उनके देश का भी मुख उज्ज्वल किया है!

एक दिन अपने पिता की सभा मे कवियो को अपने पिता के 'कच्छपकथामृत' के मगलाचरण के इस अश पर —

"करन चहत जस चारु कछु कछुवा भगवान को"

व्याख्या करते देख बालक हरिश्चन्द्र भी आ बैठे। किसी ने "कछु कछु वा उस भगवान को" यह अर्थ कहा, और किसी ने यो कहा "कछु कछुवा (कच्छप) भगवान को"। बालक हरिश्चन्द्र चट बोल उठे "नहीं नहीं बाबू जी, आपने कुछ कुछ जिस भगवान को छू लिया है उसका जस वर्णन करते हैं" (कछुक छुवा भगवान को) बालक की इस नई उक्ति पर सब सभास्थ लोग मोहित हो उछल पड़े और पिता ने सजल नेत्र प्यारे पुत्र का मुख चूमकर अपना भाग्य सराहा।

इनकी बुद्धि बचपनही से प्रखर और अनुसन्धानकारिणी थी। एक दिन पिता को तर्पण करते देख आप पूछ बैठे "बाबू जी पानी मे पानी डालने से क्या लाभ ?" धार्मिकप्रवर बाबू गोपालचन्द्र ने सिर ठोका और कहा "जान पडता है तू कुल बोरैगा"। देव तुल्य पिता के आशीर्वाद और अभिशाप दोनो ही एक एक अश मे यथा समय फलीभूत हुए, अर्थात् हरिश्चन्द्र जैसे कुल मखोज्वलकारी हुए, वैसे ही निज अतुल पैतृक सम्पत्ति के नाशकारी भी हुए।

—— o ——

शिक्षा

नौ वष की अवस्था मे पितृहीन होकर ये एक प्रकार से स्वतन्त्र हो गए। जिनकी स्वतन्त्र प्रकृति एक समय बडे बडे राजपुरुषो और स्वदेशीय बडे बडे लोगों के विरोध से न डरी उनको बालपन मे भी कौन पराधीन रख सकता था, विशेष-कर विमाता और सेवकगण ? तथापि पढने के लिये वे कालिज मे भरती किए गए। यथा समय कालिज जाने लगे। उस समय अग्रेजी स्कूलो मे लडको के चरित्र पर विशेष ध्यान रक्खा जाता था। पान खाकर कालिज मे जाने का निषेध था। पर परम चपल और उद्धत स्वभाव ये कब मानने लगे थे, पान का व्यसन इन्हें बच-पन ही से था, खूब पान खा कर जाते और रास्ते मे अपने बाग (रामकटोरा) मे ठहर कर कुल्ला करके तब कालिज जाते। पढने मे भी जसा चाहिए वैसा जी न लगाते, परन्तु ऐसा कभी न हुआ कि ये परिक्षा मे उत्तीर्ण न हुए हो। एक दो बेर के सुनने और थोडे ही ध्यान देने से इन्हें पाठ याद हो जाता था और इनकी प्रखर बुद्धि देख कर अध्यापक लोग चमत्कृत हो जाते थे। उस समय अग्रेग्री शिक्षा का बडा अभाव था। रईसो मे केवल राजा शिवप्रसाद अग्रेजी पढे थे, अतएव इनका बडा नाम था। ये भी कुछ दिनो तक उनके पास अग्रेजी पढने जाया करते थे। इसी नाते ये सदा राजा साहब को 'पूज्यतर, गुरुवर' लिखते और राजा साहब इन्हें प्रियतर, मित्रवर, लिखते थे। तीन चार वर्ष तक तो पढने का क्रम चला। कालिज मे अग्रेजी और सस्कृत पढते थे, पर रसिकराज हरिश्चन्द्र का झुकाव उस समय भी कविता की ओर था। परन्तु वही प्राचीन ढर्रे शृगार रस की। उस समय का उनका लिखा एक सग्रह मिला है जिसमे प्राय शृगार ही की कविताएँ

विशेष सग्रहीत हैं, तथा स्वय भी जो कोई कविता की है तो शृगार या धर्म-सम्बन्धी ।

—— ० ——

जगदीश यात्रा—रुचि परिवर्तन

इसी समय स्त्रियो का आग्रह श्री जगदीश-यात्रा का हुआ । स० १९२२ (स० १८६४—६५) मे ये सकुटुम्ब जगदीश यात्रा को चले । यही समय इनके जीवन मे प्रधान परिवर्तन का हुआ । बुरी या भली जो कुछ बातें इनके जीवन की सगिनी हुईं, उनका सूत्रपात इसी समय से हुआ । पढना तो छूट ही गया था । उस समय तक रेल पूरी पूरी जारी नहीं हुई थी । उस समय जो कोई इतनी बडी यात्रा करते तो उन्हें पहुँचाने के लिये जाति कुटुम्ब के लोग तथा इष्टमित्र नगर के बाहर तक जाते थे । निदान इनका भी डेरा नगर के बाहर पडा । नगर के रईस तथा आपस के लोग मिलने के लिये आने लगे । बडे आदमियो के लडको पर प्राय नगर के अर्थलोलुप लोगो की दृष्टि रहती ही है, विशेष कर पितृहीन बालक पर । अतएव वैसे ही एक महापुरुष इनके पास भी मिलने के लिये पहुँचे । ये वही महाशय थे जिनके पितामह ने बाबू हर्षचन्द्र की नाबालगी मे इनके घर को लूटा था, और उन्हीं महापुरुष के पिता ने बाबू गोपालचन्द्र की नाबालगी का लाभ उठाया था । और अब इनकी नाबालगी मे ये महात्मा क्यो चूकने लगे थे ? अतएव ये भी मिलने के लिये आए । शिष्टाचार की बातें होने पर वे इनको एकान्त मे लिवा ले गए और उन्हें दो अशर्फियाँ देने लगे । यह देख बालक हरिश्चन्द्र अचम्भे मे आ गए और पूछा "इन अशर्फियो से क्या होगा ?" शुभचिन्तक जी बोले "आप इतनी बडी यात्रा करते हैं, कुछ पास रहना चाहिए "। इन्होने उत्तर दिया "हमारे साथ मुनीब गुमाश्ते रुपये पैसे सभी कुछ हैं, फिर इन तुच्छ दो अशर्फियो से क्या होगा ?" शुभचिन्तक जी ने कहा "आप लडके हैं, इन भेदो को नहीं जानते, मै आपका पुश्तैनी 'नमकखार' हूँ । इस लिये इतना कहता हूँ । मेरा कहना मानिए और इसे पास रखिए, काम लगै तो खर्च कीजिएगा नहीं तो फेर दीजिएगा । मै क्या आप से कुछ माँगता हूँ । आप जानते ही है कि आपके यहाँ बहू जी का हुक्म चलता है । जो आपका जी किसी बात को चाहा और उन्होंने

न दिया तो उस समय क्या कीजिएगा ? कहावत है कि 'पसा पास का जो वक्त पर काम आवै' ।" होनहार प्रबल होती है, इसी से उस धूत की धूतता के जाल मे फँस गए । और उन्होने उसकी अशर्फियाँ रखलीं एक ब्राह्मण युवक उनके साथ थे, वही खजाची बने । ऋण लेने का यहीं से सूत्रपात हुआ । फिर तो उनकी तबियत ही और हो गई, मिजाज मे भी गरमी आ गई । रानीगज तक तो रेल मे गए, आगे बैल गाडी और पालकी का प्रबन्ध हुआ । बदवान मे आकर किसी बात पर ये मा से बिगड खडे हुए और बोले "हम घर लौट जाते हैं" । इस पर लोगो ने समझा कि इनके पास तो कुछ है नहीं तो फिर ये जायँगे कैसे ? यह सोच कर लोगो ने उनकी उपेक्षा की । बस चट आप उन ब्राह्मण देवता को साथ लेकर चल खडे हुए, जिन्हें उन्होने अशर्फी का खजाची बनाया था । बाजार मे आकर एक अशर्फी भुनाई और स्टेशन पर जा पहुँचे । यह समाचार जब छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र को मिला तब वह सजल-नेत्र स्टेशन पर जाकर भाई से लिपट गए । तब तो हरिश्चन्द्र का स्नेहमय हृदय सम्हल न सका, उसमे भ्रातृस्नेह उछल पडा, दोनो भाई गले लग कर खूब रोए, फिर दोनो डेरे पर लौट आए । लौट तो आए पर उसी समय से इनके हृदय मे जो स्वतत्रता का स्रोत उमड पडा वह फिर न लौटा । धीरे धीरे दोनो अशर्फियाँ खर्च हो गईं और फिर ऋण का चसका पडा । उन्हीं दो अशर्फियो के सूद ब्याज तथा अदला बदली मे उक्त पुश्तैनी 'नमकखार' के हाथ इनकी एक बडी हवेली जो पन्द्रह हजार रुपये से कम की नहीं है, लगी ।

इसी समय से इनकी रुचि गद्य-पद्य मय कविता की ओर झुकी । वह एक 'प्रवास नाटक' लिखने लगे । परन्तु अभाग्यवश वह अपूण और अप्रकाशित ही रह गया । इसी समय 'झूलत हरीचन्द जू डोल', 'हम तो मोल लए या घर के', आदि कविताएँ बनीं और इसी समय इन्होने बँगला सीखी ।

श्री जगन्नाथ जी के सिंहासन पर चिरकाल से भैरव-मूर्ति भोग के समय बैठाई जाती थी । मूख पडो का विश्वास था कि बिना भैरव-मूर्ति के श्री जगन्नाथ जी की पूजा साँग हो ही नहीं सकती । इन्हें यह बात बहुत खटकी । इन्होने नाना प्रमाणो से उसका विरोध किया । निदान अन्त मे भैरव-मूर्ति को वहाँ से हटा ही छोडा 'तहकीकात पुरी की तहकीकात !' इसी झगडे का फल है ।

—— o ——

स्कूल का स्थापन

उस यात्रा से लौटने पर इनकी रुचि कविता और देश-हित की ओर विशेष फिरी। इनको निश्चय हुआ कि बिना पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और मातृ-भाषा के उद्धार के इस देश का सुधार होना कठिन है। उस समय नगर मे कोई पाठशाला न थी। सरकारी पाठशाला या पादरियो की पाठशाला मे लडको को भेजना और फीस देकर पढ़ाना साधारण लोगो के लिये कठिन था। इसलिये इन्होने अपने घर पर लडको को पढाना आरम्भ किया। दोनो भाई मिल कर लडको को पढाते थे। फीस कुछ देनी नहीं पडती थी। पुस्तक स्लेट आदि भी बिना मूल्य ही दी जाती थी। इस कारण धीरे धीरे लडको की सख्या बढने लगी और इनका भी उत्साह बढा। तब एक अध्यापक नियुक्त कर दिया जो लडको को पढाने लगा। परन्तु थोडे ही दिनो मे लडको की इतनी सख्या अधिक हुई कि सन् १८६७ ई० मे नियमित रूप से "चौखम्भा स्कूल" स्थापित किया। और उसका सब भार अपने सिर रक्खा। उसमे अधिकाश लडके बिना फीस दिए पढने लगे, पुस्तकादि भी बिना मूल्य वितरित होने लगीं, यहाँ तक कि अनाथ लडको को खाना कपडा तक मिल जाया करता था। इस स्कूल ने काशी ऐसे नगर मे अग्रेजी शिक्षा का कैसा कुछ प्रचार किया, यह बात सव साधारण पर विदित है। पहिले यह 'अपर प्राइमरी' था, किन्तु भारतेन्दु के अस्त होने पर 'मिडिल' हुआ थोड़े दिन तक हाई स्कूल भी रहा परन्तु सहायता न होने से फिर मिडिल हो गया।

—— ० ——

हिन्दी उद्धार-व्रत का आरम्भ 'कविवचनसुधा' का जन्म

मातृभाषा का प्रेम और कविता की रुचि तो बालकपन ही से इनके हृदय मे थी। अब उसके भी पूर्ण प्रकाश का समय आया। कवि, पण्डित और विद्यारसिको का समारम्भ तो दिन रात ही होता रहता था, परन्तु अब यह रुचि 'कविवचनसुधा' रूप मे प्रकाश रूप से अकुरित हुई। सन १८६८ ई० मे 'कविवचनसुधा' मासिक पत्र के आकार मे निकला। प्राचीन कवियो की कविताओ का प्रकाश ही इनका मुख्य उद्देश्य था। कबि देवकृत 'अष्टयाम', 'दीनदयाल गिरिकृत 'अनुरागबाग', चन्दकृत 'रायसा', मलिक मुहम्मदकृत 'पद्मावत', 'कबीर की साखी', 'बिहारी के

दोहे', गिरिधरदासकृत 'नहुषनाटक', तथा शेखसादी कृत 'गुलिस्ताँ' का छन्दोमय अनुवाद आदि ग्रन्थ अशट प्रकाशित हुए। परन्तु केवल इतने ही से सतोष न हुआ। देखा कि बिना गद्य रचना इस समय कुछ उपकार नहीं हो सकता। इस समय और प्रात आगे बढ़ रहे हैं, कवल यही प्रात सबसे पीछे है, यह सोच देशभक्त हरिश्चन्द्र ने देशहित-व्रत धारण किया और "कविवचनसुधा" को पाक्षिक, फिर साप्ताहिक कर दिया तथा राजनैतिक, सामाजिक आदि आन्दोलन आरम्भ कर दिया और "कविवचनसुधा" का सिद्धान्त वाक्य यह हुआ—

"खल गनन सो सज्जन दुखी
मति होहिं, हरिपद मति रहे।
उपधम छूटै, स्वत्व निज
भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर
सम होहिं, जग आनँद लहै।
तजि ग्रामकविता, सुकविजन की
अमृत बानी सब कहै॥"

यद्यपि इस समय इन बातो का कहना कुछ कठिन नहीं प्रतीत होता है, परन्तु उस अधपरम्परा के समय मे इनका प्रकाश्य रूप से इस प्रकार कहना सहज न था। नव्य शिक्षित समाज को 'हरिपद मति रहै' कहना जैसा अरुचिकर था, उससे बढ़ कर पुराने 'लकीर के फक़ीरो' को 'उपधम छूटै' कहना क्रोधोन्मत्त करना था। जैसा ही अंग्रेज हाकिमो को 'स्वत्व निज भारत गहै, कर (टैक्स) दुख बहै' कहना कर्णकटु था, उससे अधिक 'नारि नर सम होहिं' कहना हिन्दुस्तानी भद्र समाज को चिढ़ाना था। परन्तु बीर हरिश्चन्द्र ने जो जी मे ठाना उसे कह ही डाला, और जो कहा उसे आजन्म निबाहा भी। इन्हीं कारणो से वह गवर्न्मेण्ट के क्रोध-भाजन हुए, अपने समाज से निन्दित हुए और समय समय पर नव्य समाज से भी बुरे बने, परन्तु जो व्रत उन्होने धारण किया उसे अन्त तक नहीं छोडा, यहां तक कि 'कविवचनसुधा' से अपना सम्बन्ध छोडने पर भी आजन्म यही व्रत रक्खा। 'विद्यासुन्दर' नाटक की अवतारणा भी इसी समय हुई। नाना प्रकार के गद्य पद्यमय ग्रन्थ बनने और छपने लगे। उस समय हिन्दी का कुछ भी आदर न था। इन पुस्तको और इस समाचार पत्र को कौन मोल लेता और पढता? परन्तु

देशभक्त उदार हरिश्चन्द्र को धन का कुछ भी मोह न था। वह उत्तमोत्तम कागज पर उत्तमोत्तम छपाई मे पुस्तकें छपवा कर नाम मात्र को मूल्य रखकर बिना मूल्य ही सहस्राधिक प्रतियाँ बाँटने लगे। उनके आगे पात्र अपात्र का विचार न था, जिसने माँगा उसने पाया जिसे कुछ भी सहृदय पाया उसे उन्होने स्वय दिया। यह प्रथा बाबू साहब की आजन्म रही। उन्होने लाखो ही रुपये पुस्तको की छपाई मे व्यय करके पुस्तके बिना मूल्य बाँट दी और इस प्रकार से हिन्दी के प्रेमियो की सृष्टि की और हिन्दी पढने वालो की सख्या बढाई।

—— ० ——

गवर्न्मेण्ट मान्य

इसी समय आनरेरी मैजिस्ट्रेटी का नया नियम बना था। ये भी अपने और मित्रो के साथ आनरेरी मैजिस्ट्रेट (सन् १८७० ई० मे) चुने गए। फिर म्युनिसिपल कमिश्नर भी हुए। हाकिमो मे इनका अच्छा मान्य होने लगा। परन्तु ये निर्भीत चित्त से यथार्थ बात कहने या लिखने मे कभी चूकते न थे और इसी से दूसरे की बढती से जलने वालो को 'चुगली' करने का अवसर मिलता था। इस समय भारतेश्वरी महारानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आफ एडिन्बरा भारत सन्दर्शनाथ आए। काशी मे इसका महामहोत्सव हुआ। इस महोत्सव के प्रधान सहाय यही थे। इन के घर की सजावट की शोभा आज तक लोग सराहते हैं, स्वय ड्यूक ने इसकी प्रशसा की थी। ड्यूक को नगर दिखाने का भार भी इन्हीं पर अर्पित किया गया था। इस समय सब पण्डितो से कविता बनवा और 'सुमनो-ञ्जलि' नामक पुस्तक मे छपवा कर इन्हो ने राजकुमार को समपण की थी। इस ग्रन्थ पर महाराज रीवाँ और महाराज विजयनगरम् बहादुर ऐसे प्रसन्न हुए थे कि इन्होने इसके रचयिता पण्डितो को बहुत कुछ पारितोषिक बाबू साहब के द्वारा दिया था। इसी समय पण्डितो ने भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करने के लिये एक प्रशसापत्र बाबू साहब को दिया था जिस का सार मर्म यह था—

"सब सज्जन के मान को, कारन एक हरिचन्द।
जिमि स्वभाव दिन रैन को, कारन एक हरिचन्द॥'

बाबू साहब की गुणग्राहकता पण्डित मडली के इन वाक्यो से प्रत्यक्ष विदित होती है। वास्तव मे इन्हें अपनी प्रतिष्ठा का उतना ध्यान न था जितना दूसरे उपयुक्त सज्जनो के सम्मानित करने का।

इस समय ये गवर्न्मेण्ट के भी कृपापात्र थे। 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'बालाबोधिनी' की सौ सौ प्रतियाँ शिक्षाविभाग मे ली जाती थीं। 'विद्या सुन्दर' आदि की सौ सौ प्रतियाँ ली गईं। उसी समय ये पञ्जाब युनिवर्सिटी के परीक्षक नियुक्त हुये।

'कविवचनसुधा' का आदर न केवल इस देश मे वरञ्च योरप मे भी होने लग गया था। सन् १८७० ई० मे फ्रास के प्रसिद्ध विद्वान गार्सन दी तासी ने अपने प्रसिद्ध पत्र "ली लैंगुआ डेस हिन्दुस्तानिस' मे मुक्तकण्ठ से बाबू साहब और कवि-बचनसुधा' की प्रशसा की थी।

—— ० ——

चन्द्रिका और बालाबोधिनी
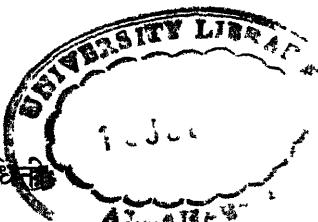
परन्तु देशहितैषी हरिश्चन्द्र इन थोथे सम्मानो मे भूलकर अपने लक्ष्य से चूकने वाले न थे। इन्हो ने देखा कि बिना मासिकपत्रों के निकाले और अच्छे अच्छे सुलेखको के प्रस्तुत किए भाषा की यथार्थ उन्नति न होगी। यह सोच उन्हें केवल 'कविवचनचसुधा'से सतोष न हुआ, और सन् १८७३ई० मे"हरिश्चन्द्र मैंग-ज़ीन" का जन्म हुआ। ८ सख्या तक इस की निकली, फिर यही 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' के रूप मे निकलने लगा। मैगज़ीन के ऐसा सुन्दर पत्र आज तक हिन्दी मे नहीं निकला। जैसाही सुन्दर आकार वैसाही कागज़, वैसी ही छपाई और उस से कहीं बढ कर लेख। उस समय तक कितने ही सुलेखको को उत्साह देकर बाबू साहब ने प्रस्तुत कर लिया था। मगज़ीन के लेख और लेखक आज भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। हरिश्चन्द्र का 'पाँचवाँ पैगम्बर' मुन्शी ज्वाला प्रसाद का 'कलिराज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', मुन्शी कमला प्रसाद का 'रेल का विकट खेल', आदि लेख आज तक लोग चाह के साथ पढ़ते हैं। लाला श्रीनिवास दास, बाबू काशीनाथ, बाबू गदाधरसिंह, बाबू ऐश्वर्य-

नारायण सिंह, पण्डित ढुँढिराजशास्त्री, श्रीराधाचरणगोस्वामी, पण्डित बद्रीनारायण चौधरी, राव कृष्णदेवशरण सिंह, पण्डित बापूदेव शास्त्री, प्रभृति विद्वज्जन इसके लेखक थे। इसी समय सन् १८७४ ई० मे इन्होने स्त्रीशिक्षा के निमित्त 'बालाबोधिनी' नाम की मासिकपत्रिका भी निकाली, जिसके लेख स्त्रीजनोचित होते थे। यही समय मानो नवीन हिन्दी की सृष्टि का है। यद्यपि भारतेन्दु जी ने सन् १८६४ ई० से हिन्दी गद्य पद्य का लिखना आरम्भ किया था और सन् १८६८ मे 'कविवचनसुधा' का उदय हुआ, परन्तु इसे स्वय भारतेन्दु जी हिन्दी के उदय का समय नहीं मानते। वह मैगजीन के उदय (सन् १८७३ ई०) से ही हिन्दी का पुनर्जन्म मानते हैं। उन्हो ने अपने 'कालचक्र' नामक ग्रन्थ मे लिखा है "हिन्दी नये चाल मे ढली (हरिश्चन्द्री हिन्दी[1]) सन १८७३ ई०।" वास्तव मे जैसी लालित्यमय हिन्दी इस समय से लिखी जाने लगी वसी पहिले न थी।

--- ० ---

पेनी रीडिङ्ग

इसी समय इन्होने 'पेनीरीडिङ्ग' (Penny Reading) नामक समाज स्थापित किया था जिस मे स्वय भद्र लोग तरह तरह के अच्छे अच्छे लेख लिख कर लाते और पढते थे। मैगजीन के प्राय सभी अच्छे अच्छे लेख इस समाज मे पढे गए थे। स्वय भारतेन्दु जी की दो मूर्तियाँ आज तक आखो के सामने घूमती हैं—एक तो श्रान्त पथिक बनकर आना और गठरी पटक पैर फला कर बैठ जाना आदि, और दूसरी पाँचवें पैगम्बर की मूर्ति। इस समाज के प्रोत्साहन से भी बहुत से अच्छे अच्छे खेल लिखे गए। इसी समय के पीछे 'कर्पूरमजरी' 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' की रचना हुई, जो कि सच पूछिए तो हिन्दी की टकसाल हैं। जैसा ही अपने ग्रन्थो पर इन्हे स्नेह था उस से कहीं बढ कर इनका प्रेम दूसरे उपयुक्त ग्रन्थकारो पर था। कितने ही नवीन और प्राचीन ग्रथ इनके व्यय से मुद्रित और विना मूल्य वितरित हुए। वास्तव मे यदि हरिश्चन्द्र सरीखा उदार हृदय, रुपये को मट्टी समझने वाला, गुणग्राही नायक हिन्दी की पतवार को

---

१ खेद का विषय है कि (हरिश्चन्द्री हिन्दी) इतना लेख जो स्वय भारतेन्दु जी ने लिखा था उसे कालचक्र छपने के समय खड्गविलास प्रेस वालो ने छोड दिया है।

उस समय न पकडता और सब प्रकार से स्वार्थ छोडकर तन मन धन से इसकी उन्नति मे न लग जाता, तो आज दिन हिन्दी का इस अवस्था पर पहुँचना कठिन था। हरिश्चन्द्र ने हिन्दी तथा देश के लिये सारे ससार की दृष्टि मे अपने को मिट्टी कर दिया।

—— ० ——

उदारता, ऋण

उस समय के 'साहित्यससार' की कुछ अवस्था आप लोगो ने सुनी। अब कुछ 'व्यावहारिक ससार' मे भी हरिश्चन्द्र को देख लीजिए। जगदीश यात्रा के पीछे उदारहृदय हरिश्चन्द्र का हाथ खुला। हम ऊपर कह ही चुके हैं कि बडे आदमियो के लडको पर धूर्तों की दृष्टि रहती ही है, अत इन्हें भी लोगों ने घेरा। एक तो यह स्वाभाविक उदार, दूसरे इनका नवीन वयस, तीसरे यह रसिकता के आगार, फिर क्या था, धन पानी की भाँति बहने लगा। एक ओर साहित्य सेवा मे रुपए लग रहे हैं, दूसरी ओर दीन दुखियो की सहायता मे तीसरे देशोपकारक कामो के चन्दो मे चौथे प्राचीन रीति के धम कार्यों मे और पाँचवें यौवनावस्था के आनन्द विहारो मे। इन सभो से बढ कर द्रव्य की ओर इनकी दृष्टि न रहने के कारण, अप्रबन्ध तथा अथलोलुप विश्वासघातको के चक्र ने इनके धन को नष्ट करना आरम्भ कर दिया। एक धार से बहने पर तो बडे बडे नदी नद सूख जाते हैं, तो फिर जिसके शतधार हो उसका कौन ठिकाना! घर के शुभचिन्तको ने इन्हें बहुत कुछ समझाया, परतु कौन सुनता था? स्वय काशीराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह बहादुर ने कहा "बबुआ! घर को देख कर काम करो"। इन्होने निर्भीत चित्त हो उत्तर दिया "हुजूर! इस धन ने मेरे पूर्वजो को खाया है, अब मै इसे खाऊँगा"। महाराज अवाक्य रह गए। शौक इन्हें ससार के सौन्दय मात्र ही से था। गाने बजाने, चित्रकारी, पुस्तक सग्रह, अद्भुत पदार्थों का सग्रह (Museum), सुगन्धि की वस्तु, उत्तम कपडे, उत्तम खिलौने, पुरातत्व की वस्तु, लैम्प, आलबम, फोटोग्राफ इत्यादि सभी प्रकार की वस्तुओ का ये आदर करते और उन्हें सग्रहीत करते थे। इन के पास कोई गुणी आजाय तो वह विमुख कभी न फिरता। कोई मनोहर वस्तु देखी और द्रव्य व्यय के विचार बिना चट

था, जब कि मैंने अपनी ग़रज़ से समझ बूझ कर उसका मूल्य तथा नज़राना आदि स्वीकार कर लिया, तो क्या अब देने के भय से मै उस सत्य को भग कर दूँ ?" धन्य हरिश्चन्द्र धन्य ! 'सत्य हरिश्चन्द्र' लिखने के उपयुक्त पात्र तुम्हीं थे ! ये वाक्य तुम्हारी ही लेखनी से निकलने योग्य थे—

"चन्द टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥"

यह दृढ़ता और यह सत्यता उनकी अन्त समय तक रही। वह पास द्रव्य न होने से दे न सकै परन्तु अस्वीकार कभी नहीं कर सकते थे। थोडे ही दिनो मे उनकी सारी पैतृक सम्पत्ति जाती रही और वह धन खोने के कारण 'नालायक़' समझे जाने लगे। इनके मातामह की लाखो की सम्पत्ति थी, जिसके उत्तराधिकारी यही दोनो भाई थे। इनकी मातामही ने ५ मे सन् १८६२ ई० को इन दोनो भाइयो के नाम अपनी समग्र सम्पत्ति का वसीयतनामा लिख दिया था। परन्तु अब तो ये नालायक़ ठहरे, इनके हाथ जाने से कोई सम्पत्ति बच न सकैगी, बडो का नाम निशान मिट जायगा, इसलिये १४ एप्रिल सँन् १८७५ ई० को मातामही ने दूसरा वसीयतनामा लिखा, जिसके अनुसार इन्हें कुछ भी अधिकार न देकर सर्वस्व छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र को दिया। निस्पृह हरिश्चन्द्र को न पहिले वसीयतनामे से सम्पत्ति पाने का हर्ष था, न इसके अनुसार उसके खोने का खेद हुआ। वकीलो की सम्मति से हिन्दू अवीरा स्त्री का इन्हें भागरहित करना सर्वथा कानून के विरुद्ध था, इसमे स्वय इनके स्वीकार की आवश्यकता थी, अतएव २८ अक्तूबर सन् १८७८ ई० को मातामही ने एक बखशीशनामा छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र के नाम लिख दिया और उदार हृदय हरिश्चन्द्र ने उस पर अपनी स्वीकृति करके हस्ताक्षर कर दिया। जिस स्वर्गीय हरिश्चन्द्र को सुमेरु भी उठाकर किसी दीन दुखी को देने मे सकोच न होता, उसे इस तुच्छ सम्पत्ति को अपने सहोदर छोटे भाई को देना क्या बडी बात थी ! कहने के साथ हस्ताक्षर कर दिया। इस बखशिशनामे के अनुसार इन्हें केवल चार हज़ार रुपया मिला था। इस प्रकार थोडे काल मे नगरसेठ हरिश्चन्द्र राजा हरिश्चन्द्र की भाँति धनहीन हरिश्चन्द्र हो गए। 'सत्य हरिश्चन्द्र' की रचना के समय पण्डित शीतला प्रसाद त्रिपाठी जी ने सत्य कहा था कि—

"जो गुन नप हरिचन्द मे, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द मे, लखहु प्रतच्छ सुजान॥

परन्तु इतना होने पर भी इन की उदारता या इन के अपरिमित व्यय मे कभी कभी न हुई। मरने के समय तक ये हजारो ही रुपए महीने मे व्यय करते थे और वह परमेश्वर की कृपा से कही न कहीं से आही जाते थे। सम्पत्तिनाश के पीछे ये बीस बाईस वर्ष और जीए, इतने समय मे इन्होने कम से कम तीन चार लाख रुपये व्यय किए, और लाखो ही रुपये ऋण किए, परतु जिस जगतपिता जगदीश्वर की सन्तान के उपकार के लिये इन का धन व्यय होता था उस की कृपा से न तो कभी इन का हाथ रुका और न मरने के समय ये ऋणी ही मरे।

— o —

हिंदी के राजभाषा बनाने का उद्योग

अब फिर साधारण हितकर कार्यों तथा साहित्य चर्चा की ओर झुकिए। जब विद्यारसिक सर विलियम म्योर की लाटगीरी का समय आया, उस समय हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिये बहुत कुछ उद्योग किया गया, परन्तु सफलता न हुई। ये इस उद्योग मे प्रधान थे। सभाएँ की थीं, प्राथनापत्र भेजे थे, समाचार पत्रो मे आन्दोलन किया था। हिन्दी के उत्तम ग्रन्थो के लिये पारितोषिक देने की व्यवस्था की गई, परन्तु उस मे भी सिफारिश की बाजार गर्म हुई। "रत्नावली", 'उत्तर-रामचरित्र' आदि के अनुवाद ऐसे भ्रष्ट निकले कि हिन्दी साहित्य को लाभ के बदले बडी हानि पहुँची। उन अनुवादको को बहुत कुछ पारितोषिक दिया गया, किन्तु उत्तम ग्रन्थो की कुछ भी पूछ न की गई। केम्पसन साहब उस समय शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर थे, राजा शिवप्रसाद उन के कृपापात्र थे। इधर राजा साहब का हृदय अपने सामने के एक 'छोकरे' की उन्नति से जला हुआ था, उधर बाबू साहब का हृदय 'हाकिमी' अन्याय से कुढ गया था, दूसरा एक कारण राजा साहब से इन के विरोध का यह हुआ कि राजा साहब ने फारसी आदि मिश्रित खिचडी हिन्दी की सृष्टि कर के उसे चलाना चाहा, और बाबू साहब ने शुद्ध हिन्दी लिखने का मार्ग चलाया और सर्व साधारण ने इसी को रुचि के साथ ग्रहण किया। अब इसे रोकने और उसे चलाने का उपाय गवर्न्मेण्ट की शरण बिना असम्भव जान राजा

साहब ने हाकिमो को उधर ही झुकाया। यही एक प्रधान कारण उस समय हिन्दी राजभाषा न होने का भी हुआ था। यदि भाषा का झगडा न हो कर अक्षरो ही का होता तो सम्भव था कि सफलता हो जाती।

इसके पीछे एजूकेशन कमीशन के समय भी बडा उद्योग किया था, तथा प्रयाग हिन्दू समाज के पूरे सहायक थे जिसने इस विषय मे बडा उद्योग किया था।

—— o ——

गवर्न्मेण्ट का कोप

बाबू साहब का स्वभाव कौतुकप्रिय और रहस्यमय तो था ही। इन्हो ने तरह तरह के पच लिखने आरम्भ किए। इधर हाकिमो के कान भरे जाने लगे। एक लेख 'लेवी प्राणलेवी' तो निकला ही था, जिस मे लेवी दर्बार मे हिन्दुस्तानी रईसो की दुर्दशा का वर्णन था, दूसरा एक 'मर्सिया' निकला जिस का कटाक्ष सर विलियम म्योर पर घटाया गया। बस, फिर क्या था, बरसो की भरी भराई बात निकल पडी, गवर्न्मेण्ट की कोपदृष्टि इन पर पडी। इस लेख के कारण 'कवि-वचनसुधा', जो गवर्न्मेण्ट लेती थी, वह बन्द किया गया। 'हरिश्चन्द्रचद्रिका' यह कहकर बन्द की गई कि इस मे 'कवि-हृदय-सुधाकर' ऐसा घृणित ग्रन्थ छपता है। उक्त ग्रन्थ मे एक यती और वेश्या का सम्वाद है। एक योग ज्ञान आदि की बडाई करता और दूसरा भोग विलास की। अन्त जय यती की हुई। यह उपदेशमय ग्रन्थ कुरुचि उत्पादक समझा गया। 'बालाबोधनी' यह कहकर बन्द की गई कि आवश्यकता नहीं है। अगरेजो मे चारो ओर इन्हें डिसलायल (राज बिरोधी) कहकर धारणा होने लगी। इन का स्वाधीन और उन्नत हृदय इस लाछना को सहन न कर सका। पहिले तो इन्हो ने उद्योग किया कि इस अनुचित विचार को दूर करावें, परन्तु इस मे कृतकार्य न होने पर इन्हो ने राजपुरुषो से सारा सम्बन्ध छोडना ही उचित समझा, क्योकि जिस व्रत को इन्होने धारण किया था उस मे हाकिम-समागम से बहुत कुछ बाधा पडती थी। आनरेरी मैजिस्ट्रेटी आदि सरकारी कामो को छोड अपने उदार उद्देश्यो की ओर लगे। वास्तव मे जिन लोगो ने इन को अपदस्थ करना चाहा था, उन्हो ने इस देश तथा स्वय के साथ बडा उपकार किया, क्योकि यदि यह घटना न होती तो ये न तो 'भारतनक्षत्र' (स्टार आफ़

इण्डिया) के बदले मे 'भारतेन्दु' (मून आफ इण्डिया) होते, और न सच्चे सहृदय हरिश्चन्द्र को पाकर यह देश ही इतना लाभ उठा सकता।

—— ० ——

राजभक्ति

यहाँ कुछ विचार इस का भी करना आवश्यक है कि ये राजद्रोही थे या राजभक्त। यदि इन के लिखे 'भारतदुर्दशा' नाटक को विचारपूर्वक देखा जाय तो इस प्रश्न का उत्तर सहज मे मिल सकता है। उस मे स्पष्ट दिखला दिया है कि हाकिम लोग राजद्रोह उसे समझे है जो वास्तविक राजभक्ति है। केवल 'करदुख बहै' इतना कहना ही राजद्रोह का चिन्ह समझा जाता है। इस बात को राजा शिवप्रसाद ने मुक्त कण्ठ से अपनी जुबिली की वक्तृता मे कह दिया है, परन्तु राजभक्त भारतहितषी हरिश्चन्द्र ऐसा कहना पूरी राजभक्ति का चिन्ह समझते थे। वह प्रजा के दु खो को राजा के कानो तक पहुँचाना राजहित समझते थे। जो व्यक्ति 'भारतजननी', 'भारतदुर्दशा' ग्रन्थो मे, जिनमे उस के राजनैतिक विचार स्पष्ट रूप से वर्णित हैं मुक्तकठ से यो कहता है—

"पृथीराज जयचन्द कलह करि यवन बुलायो।
तिमिरलग चगेज़ आदि बहु नरन कटायो॥
अलादीन औरगजेब मिलि धरम नसायो।
विषय वासना दुसह मुहम्मदसह फैलायो॥
तब लो बहु सोए बत्स तुम जागे नहिं कोऊ जतन।
अब तौ रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छाडि मन॥"

क्या वह कभी भी राजद्रोही हो सकता है जो यह कह कर—

"अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी॥"

अपने देशवासियो को व्यापार की उन्नति करने को उत्तेजित करता है? इनके बलिया आदि के व्याख्यान, कविता, नाटक, लेखादि जिसे देखिएगा, उस मे ब्रिटिश शासन से भारत के कल्याण का प्रमाण मिलैगा। हाँ, इन की बुद्धि मे जो बातें

प्रबन्ध की त्रुटि के विषय की आर्तों, उन्हें ये मुक्तकठ से कह डालते और इस सुखमय शासन का वास्तविक लाभ जो अभागे भारतवासी नहीं उठाते, उसपर अवश्य परिताप करते थे। राजभक्त हरिश्चन्द्र अपनी सर्कार के दु ख और सुख को अपना दु ख और सुख मानते थे। कौन ऐसा अवसर था जब राजा के दु ख मे दु ख और सुख मे सुख इन्होने नहीं प्रकाश किया। ड्यूक आए तब इन्होने महा महोत्सव किया और 'सुमनोञ्जलि' भेट की। प्रिन्स आफ वेलस आए तब भारत की यावत भाषाओ मे कविता बनवाकर 'मानसोपायन' भेंट किया। इङ्गलैण्ड की रानी ने जब भारत की साम्राज्ञी का पद ग्रहण किया, तब भी इन्होने महा महोत्सव किया और 'मनोमुकुलमाला' अर्पण की। काबुल विजय पर "विजयबल्लरी" बनी, मिश्र विजय पर 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' उड्डीयमाना हुई, प्रिन्स या महारानी कोई राज परिवार मे रुग्न हुए तब उनकी आरोग्य कामना के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई, कविता बनी। जब महारानी किसी दुष्ट की गोली से बचीं तब इन्होने महा महोत्सव मनाया, जिस की सराहना स्वय भारतेश्वरी ने की। जातीय सगीत (National Anthem) के लिये जो प्रतिष्ठित कमेटी बनी, उसके ये सभ्य हुए और उसका इन्होने अनुवाद किया। ड्यूक आफ अलबेनी की मृत्यु पर इन्होने शोक प्रकाशक महासभा की। प्रति वर्ष महारानी की वर्षगाँठ पर ये अपने स्कूल का वार्षिकोत्सव करते थे। निदान भारतेश्वरी के कोई सुख या दु ख का ऐसा अवसर न था जब इन्होने अपनी सहानुभूति न प्रकाश की हो—हाँ साथ ही ये 'भारतभिक्षा' ऐसे ग्रन्थो के द्वारा अपनी उदार सरकार से 'भिक्षा' अवश्य माँगते थे, वह चाहे भले ही राजद्रोह समझा जाय। यो तो विरोधियों को ड्यूक आफ् अलबेनी के अकाल ग्रसित होने पर इनका शोक प्रकाशक सभा करना भी राजद्रोह सुझाई पडा उन महापुरुषो ने सभा को अपरिणामदर्शी हाकिम की सहायता से रोक दिया, जिस के लिये भारतेन्दु से राजा शिवप्रसाद के द्वारा काशीराज से भी झगडा हो गया और बडे बखेडे के पीछे तब फिर से सभा हुई। हम इन की राज-भक्ति के विषय मे और कुछ नहीं कहा चाहते, वरन् इस का विचार पाठको के ही उदार और न्यायपूर्ण निर्णय पर छोडते हैं।

—— o ——

समाज सुधार

हमारे पाठको ने इन्हें उस समय के साहित्य ससार, व्यावहारिक वा पारि-वारिक ससार और राजकीय ससार मे देखा, अब कुछ सामाजिक ससार मे

भी देखें । इन्होने हिन्दू समाज वैश्य-अग्रवाल जाति मे जन्म ग्रहण किया था और धर्म श्री बल्लभीय वैष्णव था । जो समय इन के उदय का था वह इस प्रान्त मे एक विलक्षण सन्धि का समय था । एक ओर पुरानी लकीर के फक़ीरो का ज़ोर, दूसरी ओर नव्य समाज की नई रौशनी का विकाश । पुराने लोग पुरानी बातो से तिल-मात्र भी हटने से चिढते और नास्तिक, किरिस्तान, भ्रष्ट आदि की पदवी देते, नए लोग एक बारगी पुराने लोगो और पुरानी रीति नीति को रसातल भेज, ईश्वर के अस्तित्व मे भी सन्देह करनेवाले थे । हरिश्चन्द्र इन दोनो के बीच विषम समस्या मे पडे । प्राचीन मर्यादावाले बडे घराने मे जन्म लेने के कारण प्राचीन लोग इन्हें जामा पगडी पहिना तिलक लगाकर परम्परागत चाल की ओर ले जाना चाहते थे । और नवीन सम्प्रदाय इन के बुद्धि का विकाश तथा रुचि का प्रवाह देखकर इन से प्राचीन धर्म और प्राचीन सम्प्रदाय को तिरस्कृत करने की आशा करते थे । परन्तु दोनो ही अशत निराश हुए । इन का मार्ग ही कुछ निराला था, इन्हें गुण से प्रयोजन था, ये सत्य के अनुगामी थे । किसी का भी क्यो न हो दोष देखा और मुक्तकठ हो कह दिया, असत्य का लेश आया और पूर्ण विरोधी हुए । हिन्दू जाति, हिन्दू धम, हिन्दू साहित्य इन को परम प्रिय था । श्रीवल्लभीय वैष्णव सम्प्रदाय के पूरे अनुगामी थे । जाति भेद को मानकर अपनी वैश्य जाति के ऊपर पूर्ण प्रेम रखते थे, परन्तु साथ ही बुरी बातो की निन्दा डके की चोट पर कर देते थे, नि.शङ्क हो कर ऐसे ऐसे वाक्य लिख देते थे—

"रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माहिं घुसाए ।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाए ।।
बिधवा ब्याह निषेध कियो व्यभिचार प्रचारयो ।
रोकि बिलायत गयन कूप मडूक बनायो ।।
औरन को ससग छुडाइ प्रचार घटायो ।
बहु देबी देवता भूत प्रेतादि पुजाई ।।
ईश्वर सो सब विमुख किए हिन्दुन घबराई ।
अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन प्रीति छुडाय ।।
किए तीन तेरह सबै चौका चौका लाय" ।

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" मे लिख दिया —

"पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुजरातिन के बृन्द ।
गौतम पियत अनन्द सो पियत अग्र के नन्द" ।।

"प्रेमयोगिनी" मे मन्दिरो तथा तीर्थबासी ब्राह्मणो आदि का रहस्योद्घाटन पूरी रीति पर कर दिया। "अङ्गरेज-स्तोत्र" लिखा, जिस का अपढ़ समाज मे उलटा फल फला कि यह तो 'किरिस्तान' हो गए। जैनमन्दिर मे जाने के कारण लोग नास्तिक, धमबहिर्मुख कहकर निन्दा करने लगे, (इसी पर "जैन-कुतूहल" बना)। नवीन वयस, रसिकतामय स्वभाव, विलासप्रियता, परम स्वतन्त्र प्रकृति —निदान चारो ओर से लोग इन की चाल व्यवहार पर आलोचना करते और कटाक्षो और निन्दा की बौछारो का ढेर लगा देते थे। कोई कहता "दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन, बस हो गया", कोई कहता "पढिन का है दुइ चार बात सीख लिहिन, किरिस्तानीमते की"। ऐसी बातो से हरिश्चन्द्र का हृदय व्यथित होता था। उन्होने निज चरित्र तथा उस समय की अवस्था दिखाने के लिये "प्रेम योगिनी" नाटक लिखना आरम्भ किया था जो अधूरा ही रह गया, परन्तु उस उतनेही से उस समय का बहुत कुछ पता लगता है। उसमे इन्होंने अपने मन का क्षोभ दिखलाया है। इस इतने विरोध और निन्दावाद पर भी आश्चय की बात यह है कि लोग इन्हें अजातशत्रु कहते है और यह उपाधि इनकी सववादिसम्मत है।

—— o ——

आदि कविता

अब हम सक्षेपत इनके उन कामो का वर्णन करते हैं जिन्होने इन्हें लोकप्रिय बनाया। यह हम ऊपर कह ही आए हैं कि इन्होने अत्यन्त बाल्यावस्था से कविता करती आरम्भ की थी। अब इन की कुछ आदि कविताएँ उद्धृत करते हैं। सब से पहिला पद यह बनाया —

"हम तो मोल लिए या घर के।
दास दास श्री बल्लभकुल के चाकर राधाबर के॥
माता श्री राधिका पिता हरि बन्धु दास गुनकर के।
हरीचन्द तुमरे ही कहावत, नहिं बिधि के नहि हर के"॥

सब से पहिली सवैया यह है—

"यह सावन सोक नसावन है, मन भावन यामैं न लाजै भरो।
जमुना पै चलौ सु सबै मिलि कै, अरु गाइ बजाइ के सोक हरो॥

इमि भाषत हैं हरिचन्द पिया, अहो लाडिली देर न यामे करो।
बलि झूलो झुलाओ झुको उझको, एहि पाषै पतिव्रत ताषै धरो॥"

सब से पहिली ठुमरी यह बनाई—

"पछितात गुजरिया घर मे खरी॥
अब लग श्यामसुन्दर नहिं आए दुख दाइन भई रात अँधरिया।
बैठत उठत सेज पर भामिनि पिया बिना मोरी सूनी सेजरिया।"

सब से पहिले अपने पिता का बनाया ग्रन्थ "भारतीभूषण" शिला-यन्त्र (लीथोग्राफ) मे छपवाया। सब से पहिला नाटक "विद्यासुन्दर" बनाया।

—— ० ——

नवीन रसो की कल्पना।

इनकी बुद्धि का विकाश अत्यन्त अल्पवय मे ही पूरा पूरा हो गया था। सस्कृत मे कविता रचने की सामर्थ्य थी, समस्यापूर्ति बात की बात मे करते थे। उस समय की इनकी समस्याएँ "कवि बचन सुधा" तथा मेगजीन मे प्रकाशित हुई हैं जिन्हें देखकर आश्चय होता है। सब से बढकर आश्चय की घटना सुनिए। पण्डित ताराचरण तर्करत्न काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिह बहादुर के सभापण्डित थे, कविताशक्ति इनकी परम आदरणीय थी, ऐसे कवि इस समय कम होते हैं। विद्वान् ऐसे थे कि स्वामी दयानन्द सरस्वती सरीखे विद्वान् से इनका शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। उन पण्डित जी ने "भृङ्गार रत्नाकर" नामक सस्कृत मे भृङ्गाररस विषयक एक काव्य-ग्रन्थ काशिराज की आज्ञा से सम्वत १९१९ (सन् १८६२) मे बनाकर छपवाया है। उस समय बालक हरिश्चन्द्र की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी, परन्तु इस बालकवि की प्रखर बुद्धि ने प्रौढ कवि तर्करत्न को मोहित कर लिया था, उन्हें भी इन की युक्ति युक्त उक्तियो को आदर के साथ मान्य करके अपने ग्रन्थ मे लिखना पडा था। साहित्यकारो ने सदा से नव ही रसो का वर्णन किया है, परन्तु हरिश्चन्द्र की सम्मति मे ४ रस और अधिक होने चाहिएँ। वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनन्द रस अधिक मानते थे। इनका कथन था कि इन चारो का भाव, भृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शात, इन, नवो रसो मे से किसी मे समाविष्ट नहीं होता, अतएव इन चारो

को पृथक रस मानना चाहिए। इनके अकाट्य प्रमाणो से मुग्ध होकर तर्करत्न महाशय ने अपने उक्त ग्रन्थ मे लिखा है "हरिश्चन्द्रास्तु वात्सल्य सख्य भक्त्या-नन्दाख्यमधिक रस चतुष्टय मन्वते" आगे चलकर इन्होने उदाहरण भी दिए हैं। यो ही शृगार रस मे भी ये अनेक सूक्ष्म भेद मानते थे, जैसे ईर्षामान के दो भेद, विरह के तीन, शृङ्गार के पञ्चधा, नायिका के पाँच, और गर्विता के आठ, यो ही कितने ही सूक्ष्म विचार हैं जिनको तकरत्न महाशय ने सोदाहरण इनके नाम से अपने उक्त ग्रन्थ मे मानकर उद्धृत किए हैं। इनके इन नए मतो पर उस समय पण्डित मडली मे बहुत कुछ लिखा पढी हुई थी, इसका आन्दोलन कुछ दिनो तक, सुप्रसिद्ध "पण्डित" पत्र में, (जो "काशी-विद्या-सुधानिधि" के नाम से सस्कृत कालेज से निकलता है) चला था। खेद का विषय है कि इस विषय का पूरा निराकरण वह किसी अपने ग्रन्थ मे न कर सके। उनकी इच्छा थी कि अपने पिता के अधूरे ग्रन्थ "रस रत्नाकर" को पूरा करें और उसी मे इस विषय को लिखे। इसे उन्होने आरम्भ भी किया था और नाम मात्र को थोडा सा "हरि-श्चन्द्र मैगज़ीन" के ७-८ अङ्क मे प्रकाशित भी किया था कि जिसको देखने ही से बटुए के एक चावल की भाँति पूरे ग्रथ का पता लगता है। परन्तु उनकी यह इच्छा मन की मन ही मे रह गई और इसमे उन्हो ने अपने उस बडे दोष को प्रत्यक्ष कर दिखाया जिसे स्वय ही "चन्द्रावली नाटिका" के प्रस्तावना में पारिपार्श्वक के मुख से कहलाया था कि "वह तो केवल आरम्भ शूर है"। बाबू साहेब ने इन रसो का कुछ सक्षिप्त वर्णन अपने "नाटक" नामक ग्रन्थ मे किया है। अस्तु, जो कुछ हो, परन्तु ऐसे गम्भीर विषय पर एक १२ वर्ष के बालक का मत प्रकाश करना और एक बडे पण्डित को मना देना क्या आश्चय की बात नहीं है?

---o---

काशी मे होमियोपैथिक का प्रचार

होमियोपैथिक चिकित्सा का नाम तक काशी मे कोई नहीं जानता था, पहिले पहिल इन्होने ही अपने घर मे इसे आरम्भ किया और इसके चमत्कार गुणो से मोहित हो "होमियोपैथिक दातव्य चिकित्सालय" (सन् १८६८) स्थापित कराया, जिसमे बराबर तन मन धन से ये सहायता देते रहे इस चिकित्सालय मे १२०) वार्षिक चन्दा सन् १८६८ से ७३ तक देते रहे। बाबू लोकनाथ मैत्र बङ्गाल

के प्रसिद्ध होमियोपथिक चिकित्सक थे, वही पहिले डाक्तर काशी मे आए और उनसे भारतेन्दु जी से बडा बन्धुत्व था। इनके पीछे डाक्तर ईश्वरचन्द्र रायचौधरी इनके चिकित्सक थे। अन्त मे भी इन्हीं की दवा होती थी। इन्हें भारतेन्दु जी सदा नागरी अक्षर और बङ्ग-भाषा मे पत्र लिखा करते थे।

—— ० ——

"कविता-वर्द्धिनी-सभा"

"कविता-वर्द्धिनी-सभा" वा कविसभा का जन्म सम्वत् १६२७ मे हुआ था जिससे कितने ही गुणियो का मान बढाया जाता था और कितने ही कवियो को प्रशसापत्र दिए जाते थे, कितने ही नवीन कवि प्रोत्साहित करके बनाए जाते थे। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य को "पूरी अमी की कटोरिया सी चिर-जीवी रहौ विकटोरिया रानी" पूर्ति पर प्रशसापत्र तथा सुकवि की पदवी दी गई थी, जिसका प्रभाव उक्त पण्डित जी पर कैसा कुछ हुआ यह उनके चरित्रालोचन ही से प्रकट है। उस समय कविओ का अभाव नहीं था, सेवक, सरदार, नारायण, हनुमान, दीनदयाल गिरि, दत्त (पण्डित दुर्गादत्त गौड), द्विज मन्नालाल, आदि अच्छे अच्छे कवि जीवित थे, प्राय सभी आते और विलक्षण समागम होता था। इससे जो प्रशसापत्र दिया जाता था वह यह था —

प्रशंसापत्र।

यह प्रशसापत्र को कवि सभा की ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को (जो पूण करने के हेतु दी गई थी) इन्हो ने उत्तमता से पूण किया और दत्त विषय की कविता इन ने प्रशसा के योग्य की है इस हेतु मिती की काव्य वर्द्धिनी सभा के सभापति, सभाभूषण, सभासद और लेखाध्यक्षो ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्व्वक आदर से इन को यह पत्र दिया है।

मि० सवत् १६२७

ह० ह०

सभापति लेखाध्यक्ष

—— ० ——

मुशायरा

यद्यपि ये हिन्दी के जन्मदाता और उर्दू के शत्रु कहे जाते है, परन्तु गुण ग्रहण करने मे शत्रु मित्र का विचार नहीं करते थे। उर्दू कवियो के प्रोत्साहन के लिये सन् १२८४ हिज्री (सन् १८६६ ई०) मे इन्होने "मुशाइरा" स्थापित किया था, जिसमे उस समय के शाइर इकटठे होते और समस्या पूर्ति करते। स्वय बाबू साहब भी कविता (उर्दू) करते थे। अपना नाम उर्दू कविता मे "रसा" (पहुँचा हुआ) रखते थे।

—— o ——

धर्म सभा तथा तदीय समाज

काशीराज महाराज की ओर से काशी मे "धम सभा" सस्थापित हुई थी। इसके द्वारा परीक्षाएँ होती थीं, अनेक धर्म काय होते थे, इस के ये सम्पादक और कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए थे।

सम्बत् १९३० मे इन्होने "तदीय समाज" स्थापित किया था। यद्यपि यह समाज प्रेम और धर्म सम्बन्धी था, परन्तु इस से कई एक बडे बडे काम हुए थे। इसी समाज के उद्योग से दिल्ली दर्बार के समय गवर्न्मेण्ट की सेवा मे सारे भारतवर्ष की ओर से कई लाख हस्ताक्षर कराके गोबध बन्द करने के लिये अर्जी गई थी। गोरक्षा के लिये 'गोमहिमा' प्रभृति ग्रन्थ लिख कर बराबर ही आन्दोलन मचाते रहे। लोग स्थान स्थान मे 'गोरक्षिणी सभाओ' तथा गोशालाओ के स्थापित होने के सूत्रधार मुक्तकठ से इनको और स्वामी दयानद सरस्वती को मानते है। इस समाज ने हजारो ही मनुष्यो से प्रतिज्ञा लेकर मद्य और मास का व्यवहार बन्द कराया था। उस समय तक यहाँ कहीं Total Abstinence Society का जन्म भी नहीं हुआ था। इस समाज की ओर से हजारो पुस्तकें दो प्रकार की चेक बही के भाँति छपवाकर बाँटी गई थीं, जिनमे से एक पर दो साक्षियो के सामने शपथपूवक प्रतिज्ञा लिखाई जाती थी कि मै इतने काल तक शराब न पीऊँगा और दूसरे पर मास न खाने की प्रतिज्ञा थी। कुछ दिन तक इसका बडा जोर था। इस समाज ने बहुत से लोगो से प्रतिज्ञा कराई थी कि जहाँ तक

सम्भव होगा वे देशी पदार्थों ही का व्यवहार करैगे। स्वय भी इस प्रतिज्ञा का पालन यथासाध्य करते रहे। इस समाज से "भवगद्भक्तितोषिणी" मासिक पत्रिका भी निकली थी जो थोडे ही दिन चलकर बन्द हो गई। इस समाज के नियमादि विशेष रोचक है इसलिये प्रकाशित किए जाते है।

स समाज को मि० श्रावण शुक्ल १३ बुधवार स० १९३० को आरम्भ किया था। ! सके नियम ये थे—

१　श्री तदीय समाज इसका नाम होगा।

२　यह प्रति बुधवार को होगा।

३　कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भी होगा।

४　प्रत्येक वैष्णव इस समाज मे आ सकते हैं परन्तु जिनका शुद्ध प्रेम होगा वे इसमे रहैंगे।

५　कोई आस्तिक इस समाज मे आ सकता है पर जब एक सभासद उसके विषय मे भली भाँति कहैगा।

६　जो कुछ द्रव्य समाज मे एकत्रित होगा धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया जायगा।

७　समाज क्या करेगा—

(क) समाज का आरम्भ किसी प्रेमी के द्वारा ईश्वर के गुणानुवाद से होगा।

(ख) गुरुओ के नामो का सङ्कीर्तन होगा।

(ग) एक वक्ता कोई सभासद गत समाज के चुने हुए विषय पर कहेगा।

घ) एक अध्याय श्री गीताजी का और श्रीमद्भागवत दशम का एक अध्याय, पढे जायँगे।

(ङ) समाज के समाप्ति मे नाम सङ्कीर्तन होगा और दूसरे समाज के हेतु विषय नियत किया जायगा और अत मे प्रसाद बँटैगा।

८　इसके और भी क्रम सामाजिको की आज्ञा से बढ़ सकते हैं।

९　यद्यपि इस समाज से जगत और मनुष्यो से कुछ सम्बन्ध नहीं तथापि जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करैगा और हिंसा के नाश करने मे प्रवृत्त होगा।

इसके ये महाशय सभासद थे, १ श्री हरिश्चन्द्र २ राजा भरत पूर (राव श्री कृष्णदेव शरण सिंह—अच्छे कवि और विद्वान थे) ३ श्री गोकुलचन्द्र ४ दामोदर शास्त्री (सस्कृत हिन्दी के प्रसिद्ध कवि) ५ तिलँवण कर (?) ६ तारका-

श्रम (अच्छे विरक्त थे) ७ प्रयागदत्त (सच्चरित्र ब्राह्मण थे) ८ शुकदेव मिश्र (श्री गोपाललाल जी के मन्दिर के कीर्तनिया) ९ हरीराम (प्रसिद्ध वीणकार बाजपेई जी) १० व्यास गणेशराम जी (श्री मद्भागवत के अच्छे वक्ता थे, बडे उत्साही थे, भागवत सभा, कान्यकुब्ज पाठशाला के सस्थापक थे) ११ कन्हैयालाल जी (बाबू गोपालचन्द्र जी के सभासद) १२ शाह कुन्दनलाल जी (श्री वृन्दाबन के प्रसिद्ध कवि और महानुभाव) १३ मिश्र रामदास (?) १४ बाबा जी (?) १५ बिट्ठल भट्टजी (बडे विद्वान और भावुक वक्ता थे) १६ गोरजी (प्रसिद्ध तीर्थोद्धारक गोरजी दीक्षित) १७ रामचन्द्र पत (?) १८ रघुनाथ जी (जम्बू राजगुरु बडे विद्वान और गुणी थे) १९ शीतल जी (काशी गवर्न्मेण्ट कालिज के सुप्रसिद्ध अध्यापक, पण्डित मण्डली मे मुख्य और सस्कृत हिन्दी के कवि) २० बेचनजी (गवर्न्मेण्ट कालिज के प्रधानाध्यापक, पण्डित मात्र इन्हें गुरुवत् मानते थे और अग्रपूजा इनकी होती थी, महान् विद्वान और कवि थे) २१ वीसूजी (काशी के प्रसिद्ध रईस, परम वैष्णव और सत्सङ्गी) २२ चिन्तामणि (कवि-वचन-सुधा के सम्पादक) २३ राघवाचार्य (बडे गुणी थे) २४ ब्रह्मदत्त (परम विरक्त ब्राह्मण थे) २५ माणिक्यलाल (अब डिप्टी कलकटर हैं) २६ रामायण शरण जी (बडे महानुभाव थे, समग्र तुलसीकृत रामायण कठ थी, पचासो चेले लिए रामायण गाते फिरते थे, बडे सुकठ थे, काशिराज बडा आदर करते थे, काशी के प्रसिद्ध महात्माओ मे थे) २७ गोपालदास २८ वृन्दाबन जी २९ बिहारी लाल जी ३० शाह फुन्दन लाल जी (शाह कुन्दन लाल जी के भाई, बडे महानुभाव थे) ३१ पण्डित राधाकृष्ण लाहौर (पञ्जाब केशरी महाराज रञ्जीत सिंह के गुरु पण्डित मधुसूदन के पौत्र, लाहौर कालिज के चीफ पण्डित) ३२ ठाकुर गिरिप्रसाद सिंह (बेसवां के राजा, बडे विद्वान और वैष्णव थे) ३३ श्री शालिग्रामदास जी लाहौर (पञ्जाब मे प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, सुकवि थे) ३४ श्री श्रीनिवासदास लाहौर ३५ परमेश्वरी दत्त जी (श्री मद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ता थे) ३६ बाबू हरिकृष्णदास (श्री गिरिधर चरितामृत आदि ग्रन्थों के कर्ता) ३७ श्री मोहन जी नागर ३८ श्री बलवन्त राव जोशी ३९ व्रजचन्द्र (सुकवि हैं) ४० छोटू लाल (हेड मास्टर हरिश्चन्द्र स्कूल) ४१ रामूजी।

इसमे बिना आज्ञा कोई नहीं आने पाता था। काशी के प्रसिद्ध जज पण्डित हीरानन्द चौबे जी के वशधर पण्डित लोकनाथ जी ने जो स्वय बडे कवि थे नाथ नाम रखते थे टिकट मिलने के लिये यह दोहा लिखा था——

"श्री व्रजराज समाज को तुम सुन्दर सिरताज ।
दीजै टिकट नेवाज करि नाथ हाथ हित काज ॥"
(२२ जनवरी १८७४)

स्वय इस समाज मे तदीय नामाङ्कित अनन्य वीर वष्णव की पदवी ली थी । उसका प्रतिज्ञा पत्र यहाँ प्रकाशित होता है —

"हम हरिश्चन्द्र अगरवाले श्री गोपालचन्द्र के पुत्र काशी चौखम्भा महल्ले के निवासी तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामाङ्कित अनन्य वीर वैष्णव का पद स्वीकार करते है और नीचे लिखे हुए नियमो का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं

१ हम केवल परम प्रेम मय भगवान श्री राधिका रमण का भी भजन करेंगे
२ बडी से बडी आपत्ति मे भी अन्याश्रय न करेंगे
३ हम भगवान से किसी कामना के हेतु प्रार्थना न करेंगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहेंगे
४ जुगल स्वरूप मे हम भद दृष्टि न देखेंगे
५ वैष्णव मे हम जाति बुद्धि न करेंगे
६ वैष्णव के सब आचार्य्यों मे से एक पर पूण विश्वास रक्खेंगे परन्तु दूसरे आचार्य्य के मत विषय मे कभी निन्दा वा खण्डन न करगे
७ किसी प्रकार की हिंसा वा मास भक्षण कभी न करेंगे
८ किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायँगे न पीयेंगे
९ श्री मद्भगवद्गीता और श्री भागवत को सत्य शास्त्र मानकर नित्य मनन शीलन करेंगे ।
१० महाप्रसाद मे अन्न बुद्धि न करेंगे ।
११ हम आमरणान्त अपने प्रभु और आचार्य पर दृढ विश्वास रखकर शुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करेंगे ।
१२ वैष्णव माग के अविरुद्ध सब कम करेंगें और इस मार्ग के विरुद्ध श्रौत स्मार्त वा लौकिक कोई कम न करेंगें ।
१३ यथा शक्ति सत्य शौच दयादिक का सवदा पालन करेंगे ।
१४ कभी कोई बाद जिससे रहस्य उद्घाटन होता हो अनधिकारी के सामने न

कहैंगे। और न कभी ऐसा बाद अवलम्बन करेंगे जिस्से आस्तिकता की हानि हो।

१५ चिन्ह की भाँति तुलसी की माला और कोई पीत वस्त्र धारण करेंगे।

१६ यदि ऊपर लिखे नियमो को हम भग करगे तो जो अपराध बन् पड़ैगा हम समाज के सामने कहैंगे और उसकी क्षमा चाहैंगे और उसकी घृणा करेंगे।

मिती भाद्रपद शुक्ल ११ सवत १९३०

साक्षी

प० वेचन राम तिवारी

प० ब्रह्मदत्त

चिन्तामणि

दामोदर शर्मा

शुकदेव

नारायण राव

माणिक्यलाल जोशी शर्मा

हरिश्चन्द्र

हस्ताक्षर तदीय नामाङ्कित अनन्य वीर वैष्णव

यद्यपि मैंने लिख दिया है तथापि इसकी लाज तुम्हीं को है

(निज कल्पित अक्षर मे)

मुहर | तदसीय समाज |

—— o ——

लोक-हितकर सभा आदि

इस समाज के अतिरिक्त "हिन्दी डिबेटिङ्ग क्लब", "यङ्ग मेन्स एसोसिएशन", "काशी सार्वजनिक सभा", "वैश्य हितैषिणी सभा", अदालतो मे हिन्दी जारी कराने के लिये सभाएँ आदि कितनी ही सभा सोसाइटिएँ इन्होने स्थापित की थीं कि जिनका अब पूरा पूरा पता तक नहीं लगता।

इन अपनी सभा सोसाइटिओ के अतिरिक्त जितने ही देशहितकर तथा लोक-हितकर कार्य होते थे सभो मे ये मुख्य सहायक रहते थे। "बनारस इन्स्टिट्यूट" के ये सस्थापको मे से थे। इस 'इन्स्टिटयट' मे इनसे और राजा शिवप्रसाद से प्राय चोट चलती थी। "कारमाइकल लाइब्रेरी" तथा "बाल-सरस्वती-भवन" के सस्थापन मे प्रधान सहायक थे, हजारो ही ग्रन्थ दिए थे। "काशीपत्रिका", "भारतमित्र", "मित्रविलास", "आर्यमित्र" आदि यावत् प्राचीन हिन्दी पत्रो को प्रोत्साहन तथा लेखादि सहायता द्वारा जन्म देने के ये प्रधान कारण थे। खानदेश

के अकाल मे सहायता देने के लिये ये बाज़ार मे खप्पर लेकर भीख माँगते फिरे थे, हज़ारो ही रुपए उगाह कर भेजे थे। काशी के कम्पनी बाग़ मे लोगो के बैठने को लोहे की बेञ्चें अपने व्यय से रखवाई थी। मणिकर्णिका कुड मे हज़ारो यात्री गिरा करते थे, उस मे लोहे का कटघरा अपने व्यय से लगवा दिया। माधोराय के प्रसिद्ध धरहरे पर छड नहीं लगे थे, जिससे कभी कभी मनुष्य गिरकर चूर हो गए हैं, उस पर छड अपने व्यय से लगवाया इन कार्यों के लिये म्यूनिसिपलिटी ने धन्यवाद दिया था। म्यो मेमोरिअल मे १५००) रु० दिया था। फ्रास और जर्मन की लडाई का इतिहास तथा सर विलियम म्योर की जीवनी, गोरक्षा पर उपन्यास आदि कितने ही ग्रन्थ रचना के लिये पारितोषिक नियत किया था। प्रात स्मरणीया मिस मेरी कारपेन्टर के स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी उद्योग मे प्रधान सहायक थे। विवाह आदि मे अपव्ययिता कम करने के आन्दोलन के सहकारी थे। मिस्टर शेरिङ्ग, डाक्तर हार्नली, डाक्तर राजेन्द्र लाल मित्र, पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति कितने ही ग्रन्थकारो के कितने ही ग्रन्थ रचना मे ये सहायक रहे हैं, जिन्हें उन्हो ने निज ग्रन्थो मे धन्यवाद पूवक स्वीकार किया है। थिआसोफिकल सोसाइटी के सस्थापक कर्नल आलकाट और मडेम ब्लेवेट्स्की का काशी मे जब जब आना हुआ तब तब ये उनके सहायक रहे। अपने स्कूल के छात्र दामोदरदास के बी० ए० पास करने पर सोने की घडी और काशी सस्कृत कालेज से आचाय परीक्षा मे पहिले पहिल जितने लडके पास हुये थे सभो को घडिएँ पारितोषिक दी थीं। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तो मे जितनी लडकियाँ अग्रेज़ी परीक्षाओ मे उत्तीर्ण हुई थीं सभो को शिक्षाविभाग द्वारा साडिएँ पारितोषिक दी थीं। इनमे से कलकत्ता बेथुन कालेज की लडकयो को जो साडिएँ भेजी गई थीं उन्हें श्रीमती लेडी रिपन ने अपने हाथ से बाँटा था। बङ्गाल के डाइरेकटर सर आलफ्रेड क्राफट साहब ने लिखा था कि जिस समय श्रीमती ने हष पूवक यह आप का उपहार कन्याओ को दिया था, उस समय आनन्द ध्वनि से सभास्थल गूँज उठा था। ब्राह्म विवाह पर जिस समय क़ानून बन रहा था उस समय इन्होने जो सहायता दी थी उसके लिये उक्त समाज के नेता स्वर्गीय केशवचन्द्र सेन ने अपने पत्र द्वारा हृदय से इन्हे धन्यवाद दिया था। सन् १८८३ ई० मे भारतबन्धु लार्ड रिपन के समय मे जो इलबर्ट बिल का आन्दोलन उठा था उसे इन्होने अपने "काल चक्र" मे "आर्यों मे ऐक्य का सस्थापन (इलबर्ट बिल) सन् १८८३" लिखा था। वास्तव मे उसी समय से हिन्दुस्तानियो मे कुछ ऐक्य का बीजारोपन हुआ। उस समय सुप्रसिद्ध बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने एक

"नैशनल फण्ड" स्थापित किया था, उस के लिये वह काशी भी आए थे, ये उस के प्रधान सहायक हुए और बाबू सुरेन्द्रनाथ को एक "ईवनिङ्ग पार्टी" भी दी थी। इसके पीछे ही "नैशनल काङ्ग्रेस" का जन्म हुआ, अत यह आन्दोलन भी उसी में विलीन हो गया। जिस समय सर विलियम म्योर के स्वागत मे काशी मे गङ्गातट पर रौशनी हुई थी उस समय इन्होने एक नाव पर Oh Tax और दूसरी पर—

"स्वागत स्वागत धन्य प्रभु श्री सर विलियम म्योर।
टिकस छोडावहु सबन को, बिनय करत कर जोर"॥

यह रोशनी मे लिखवाया था। निदान जितने ही देश-हितकर तथा लोकहितकर काय होते सभी मे ये जी जान से सहायक होते थे।

श्री मुकुन्दराय जी के छप्पन भोग के उत्सव के निमित्त ११००) रु० की सेवा की थी। स्ट्रेन्जस होम, सोलजर्स सोसाइटी, जौनपुर के बाढ़ की सहायता, आदि जो अवसर आते उनमे ये मुक्तहस्त हो सहायता करते थे।

प्रसिद्ध बङ्ग कवि हेमचन्द्र बानर्जी, राजकृष्ण राय, द्वारिका नाथ विद्याभूषण, बङ्किमचन्द्र चटर्जी, पञ्जाब यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार तथा हिन्दी के सुलेखक नवीनचन्द्र राय, हिन्दू पेट्रियट सम्पादक कृष्णदास पाल, रईस रैयत सम्पादक डाक्तर शम्भूचन्द्र मुकर्जी, पूना सार्वजनिक सभा के सस्थापक गणेश वासुदेव जोशी, बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान डाक्तर भाऊ दाजी और पजाब के प्रसिद्ध रईस और विद्यारसिक सर अतर सिंह भदौडिया आदि से इनसे विशेष स्नेह था और इनके कामो मे बराबर सहायक होते थे।

—— ० ——

गुणियो का आदर

यह हम ऊपर कह आए हैं कि गुणियो का आदर और गुणग्राहकता इनका स्वभाव था। काशी मे कोई गुणी आकर इनसे आदर पाए बिना नहीं जाता था। कवियो के तो ये कल्पतरु थे। कवि परमानन्द को बिहारी सतसई के सस्कृत अनुवाद करने पर ५००) पारितोषिक दिया था। महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी जी को निम्नलिखित दोहे पर १००) और अग्रेजी रीति पर अपनी जन्मपत्री बनवाकर ५००) दिया था —

"राजघाट पर बँधत पुल जहा कुलीन की ढेर ।
आज गए कल देख के आजहि लौटे फेर ॥"

इस प्रकार से कितनो का क्या क्या सत्कार किया इसका ठिकाना नहीं । परन्तु कुछ गुणियो के गुण का यहाँ पर वर्णन करना परमावश्यक है, क्योकि ऐसे अद्भुत गुणो का भारतवासियो मे होना परम गौरव की बात है । अब वे गुणी नहीं है, परन्तु उनकी कीर्ति इतिहास मे रहनी चाहिए । सुप्रसिद्ध विद्वान् भारत-मातण्ड श्री गट्टू लाला जी की विद्वत्ता, आशु कविता और शतावधान आदि आश्चय शक्तिये जगत प्रसिद्ध हैं, उसका वर्णन निष्प्रयोजन है । इन गटटू लाला जी के सम्मान मे इन्होने काशी मे महती सभा की थी, जिसमे यूरोपीय विद्वान् भी आकर अच-म्भित हुए थे । एक दक्षिणी विद्वान् आए थे, इनका नाम नारायण मार्तण्ड था, इनकी गणित मे विलक्षण शक्ति थी, गणित के ऐसे बडे बडे हिसाब जिनको अच्छे अच्छे विद्वान् पॉच चार दिन के परिश्रम मे भी नहीं कर सकते, उन्हें यह पाँच मिनिट के भीतर करते थे और विशेषता यह थी कि उसी समय कोई उनके साथ ताश खेलता, कोई शतरञ्ज, कोई चौसर, कोई उनको बकवाता और तरह तरह के प्रश्न करता जाता परन्तु इन सब कामो के साथही वह मन ही मन हिसाब भी कर डालते और वह हिसाब अभ्रान्त होता । इनका बाबू साहब के कारण काशी मे बडा आदर हुआ । काशिराज ने भी इन्हें आदर दिया था । एक मद्रासी ब्राह्मण वेङ्कट सुप्पैया-चार्य आए थे, इनका गुण दिखाने के लिये अपने बाग रामकटोरा मे सभा की थी । उसमे बनारस कालिज के प्रिन्सिपल ग्रिफिथ साहब तथा अन्य यूरोपीय और देशीय सज्जन एकत्रित थे । धनुर्विद्या के आश्चर्य गुण इन्होने दिखाए । अपनी आँखो मे पट्टी बॉधकर उस तीक्ष्ण तीर से जिससे लोहे की मोटी चादरों मे छेद हो जाय, एक व्यक्ति की ऑख पर तिनका बॉध कर उसमे मोम से दुअन्नी चपकाकर केवल शब्द पर बाण मारा, दुअन्नी उड गई और तिनका ज्यो का त्यो रहा, जैसे अर्जुन ने महाभारत मे जयद्रथ का सिर तीरो के द्वारा उडाकर उसके पिता के हाथ मे गिराया था, वैसेही इन्होने एक नारङ्गी को तीरो के द्वारा उडाया और लगभग तीस चालीस कोस की दूरी पर खडे एक मनुष्य के हाथ मे गिरा दिया, अँगूठी को कूए मे फेंककर बीच ही से तीरो के द्वारा रहट की भाँति उसे बाहर ला गिराया, निदान ऐसे ही आश्चर्य तमाशे किए थे । यूरोपियनों ने मुक्तकठ हो कहा था कि महाभारत मे लिखी बातें इस को देखकर सच्ची जान पडती हैं । एक पहलवान तुलसीदास बाबा आए थे, इनका कौतुक नार्मल स्कूल मे कराया था । हाथी बाँधने का सूत

का रस्सा पर के अगूठे मे बाँधकर तोड डालते, मोटे से मोटे लोहे के रम्भो को मोम की बत्ती की तरह दोहरा कर देते, दो कुर्सियो पर लेटकर छाती को अधड मे रखकर उस पर छ इञ्च मोटा पत्थर तोडवा डालते, नारियल की जटा सहित सिर पर मार कर तोड डालते निदान मानुषी पौरुष की पराकाष्ठा थी। पण्डितवर बापूदेव शास्त्री जी को नवीन पञ्चाङ्ग की रचना पर दुशाले आदि से पुरष्कृत किया था।

प्रसिद्ध वीणकार हरीराम वाजपेई कितने ही दिनो तक इनसे ५०) रु० मासिक पाते रहे। निदान अपने वित्त से बाहर गुणियो का आदर करते। इनके अत्यन्त कष्ट के समय मे भी कोई गुणी इनके द्वार से विमुख न जाता।

—— ० ——

पुरातत्त्व

पुरातत्त्व के अनुसन्धान की ओर इनकी पूरी रुचि थी। इनके द्वारा डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र को बहुत कुछ सहायता मिलती थी। इनके अविष्कृत कितने ही लेख "एशियाटिक सोसाइटी" के 'जर्नल' तथा 'प्रोसीडिङ्ग' मे छपे हैं। इनके पुस्तकालय की प्राचीन पुस्तकों से उक्त सोसाइटी को बहुत कुछ सहायता मिलती थी। गवर्न्मेण्ट द्वारा प्रकाशित सस्कृत ग्रन्थो की सूची तथा पुरातत्त्व सम्बन्धी ग्रन्थ इन उपकारो के बदले गवर्न्मेण्ट इन्हें उपहार देती थी। इन्होने एक अत्यन्त प्राचीन भागवत को 'एशियाटिक सोसाइटी' मे उपस्थित करके इस बात का निणय करा दिया कि श्रीमद्भागवत वोपदेव कृत नहीं है। प्राचीन सिक्को और अशर्फियो का सग्रह भी अमूल्य किया था, परन्तु खेद का विषय है कि किसी लोभी ने उसे चुराकर उनको अत्यन्त ही व्यथित कर दिया। अब भी पैसे रुपए तथा स्टाम्प का अच्छा सग्रह है। पुरातत्व विषयक अनेक लेख भी लिखे हैं।

—— ० ——

परिहास प्रियता

परिहास-प्रियता भी इनकी अपूव थी। अँगरेजी मे पहिली अप्रैल का दिन मानो होली का दिन है। उस दिन लोगो को धोखा देकर मूर्ख बनाना बुद्धिमानी

का काम समझा जाता है। इन्होने भी कई बेर काशीवासियो को योही छकाया था। एक बेर छाप दिया कि एक यूरोपीय विद्वान् आए हैं जो महाराजा विजियानग्रम् की कोठी मे सूर्य्य चन्द्रमा आदि को प्रत्यक्ष पृथ्वी पर बुलाकर दिखलावैगे। लोग धोखे मे गए और लज्जित होकर हँसते हुए लौट आए। एक बेर प्रकाशित किया कि एक बडे गवैये आए हैं, वह लोगो को 'हरिश्चन्द्र स्कूल' मे गाना सुनावैगे। जब हजारो मनुष्य इकट्ठे हो गए तब पर्दा खुला, एक मनुष्य विचित्र रङ्गो से मुख रँगे, गदहा टोपी पहिने, उलटा तानपूरा लिए, गदहे की भाँति रेक उठा। एक बेर छाप दिया था कि एक मेम रामनगर से खडाऊँ पर चढकर गङ्गा पार उतरैगी। इस बेर तो एक भारी मेला ही लग गया था। परन्तु सन्ध्या को कोलाहल मचा कि "एप्रिल फूल्स"। लडकपन मे भी अपने घर के पीछे अँधेरी गली मे फासफरस से विचित्र मूर्ति और विचित्र आकार लिखकर लोगो को डरवाते थे। मित्रो के साथ नित्य के हास परिहास उनके परम मनोहर होते थे। श्री जगन्नाथ जी को जो फूल की टोपी पहिनाई जाती है वह इतनी बडी होती है कि मनुष्य उसमे छिप जाय, इन्होने यह कौतुक किया कि आप तो टोपी मे छिप गए और छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र ने लोगो से कहा कि श्री जगदीश का प्रत्यक्ष प्रभाव देखो कि टोपी आप से आप चलती है, बस टोपी चलने लगी लोग देखकर अचम्भे मे आ गए। अन्त मे आपने टोपी उलट दी तब लोगो को भेद खुला।

उदारता-धन के बिना कष्ट

इनकी उदारता जगत्-प्रसिद्ध है। हम केवल दो चार बातें उदाहरण स्वरूप यहाँ लिखते हैं। हिस्सा होने के थोडे ही दिन पीछे महाराज बितिया के यहाँ से इनके हिस्से का छत्तीस हजार रुपया वसूल होकर आया। इन्होने उसको अपने दर्बारी एक मुसाहिब के यहाँ रख दिया। कुछ थोडा बहुत द्रव्य उसमे से आया था कि उन्होने रोते हुए आकर कहा "हुजूर! मेरे यहाँ चोरी हो गई। आपके रुपये के साथ मेरा भी सवस्व जाता रहा।" उनके रोने चिल्लाने से घबराकर इन्होने कहा "तो रोते क्या हो? गया सो गया, यही गनीमत समझो कि चोर तुम्हें उठा न ले गए"। चलिए मामला तै हुआ। लाख लो [illegible] हैं

तङ्ग करके रुपया वसूल किया जाय, परन्तु भारतेन्दु जी ने कुछ न किया और कहा "चलो, बिचारा ग़रीब इसी से कमा खायगा"। कुछ करने की कौन कहे, उन्हें अपनी मुसाहिबी से भी नहीं निकाला। उक्त व्यक्ति एक दिन इतना बढा कि लखपती हो गया। कुछ दिनो पीछे जब द्रव्याभाव हो गया था और प्राय कष्ट उठाया करते थे उस अवस्था मे एक दिन बहुत से पत्र और पैकेट लिखकर रक्खे थे कि उनके एक मित्र के छोटे भाई (लाला जगदेवप्रसाद गौड) उनसे मिलने आए। उन्होने पूछा "बाबू साहब ! ये सब पत्र डाक मे क्यो नहीं गए ?" उत्तर मिला "टिकट बिना" उक्त महाशय ने २) रु० का टिकट मँगाकर उन सभो को डाक मे छुडवाया। उस २) को भारतेन्दु महोदय ने उन्हें कम से कम दस बेर दिया। उक्त महाशय का कथन है कि "जब मै मिलने गया २) रु० टिकट वाला मुझे दिया, मैंने लाख कहा कि मै कई बेर यह रुपया पा चुका हूँ, पर उन्होने एक न माना, कहा तुम भूल गए होगे, मैंने विशेष आग्रह किया तो बोले अच्छा, क्या हुआ, लडके तो हो, मिठाई ही खाना"। एक आलबम चित्रो का इन्होने अत्यन्त ही परिश्रम के साथ सग्रह किया था, जिसमे बादशाहो, विद्वानो, आचार्यों आदि के चित्र बडे व्यय और परिश्रम से सग्रह किए थे। एक शाहजादे महाशय उस आलबम की एक दिन बडी ही प्रशसा करने लगे। आपने कहा कि "जो यह इतना पसन्द है तो नजर है"। बस फिर क्या था, उक्त महोदय ने उठकर लम्बी सलाम की और लेकर चलते बने। उदार-हृदय हरिश्चन्द्र को कभी किसी पदार्थ को देकर दु ख होते किसी ने नहीं देखा, परन्तु इस आलबम का उन्हें दु ख हुआ। पीछे वह इसका मूल्य ५००) रु० तक देकर लेना चाहते थे, परन्तु न मिला। एक दिन आप कहीं से एक गजरा फूलो का पहिने आ रहे थे। एक चौराहे पर उसे लपेटकर रख दिया। जो नौकर साथ मे था उसे कुछ सन्देह हुआ। वह इन्हें पहुँचा-कर फिर उसी चौराहे पर लौट आया, तो उस गजरे को ज्यो का त्यो पाया। उठाकर देखा तो उसमे पाँच रुपए लपेट कर रक्खे हुए थे। एक दिन जाडे की ऋतु मे रात को आप आ रहे थे, एक दीन दुखी सडक के किनारे पडा ठिठुर रहा था, दयार्द्रचित्त हरिश्चन्द्र से यह उसका दुख न देखा गया, बहुमूल्य दुशाला जो आप ओढे हुए थे उस पर डाल चुप चाप चले आए। ऐसा कई बार हुआ है। एक दिन मोतियो का कठा पहिनकर गोस्वामी श्री जीवनजी महाराज (मुम्बई वाले) के दर्शन को गए। महाराज ने कहा "बाबू ! कठा तो बहुत ही सुन्दर है"। आपने चट उसे भेट कर दिया। कितने व्यक्तियो को हजारो रुपए के फोटोग्राफ उतारने

के सामान, तथा जादू के तमाशे के सामान लेकर दे दिए कि जिनसे वे आज तक कमाते खाते हे। निदान कितने ही उदाहरण ऐसे हैं जिनका पता लगाना या वणन करना असम्भव है। लिफाफे मे नोट रखकर या पुडिया मे रुपया बाधकर चुपचाप देना तो नित्य की बात थी। कोई व्यक्ति दो चार दिन भी इनके पास आया और इन्हें उसका खयाल हुआ,, आप कष्ट पाते परन्तु उसे अवश्य कुछ न कुछ देते। यह अवस्था इनकी मरने के समय तक थी। सन् १८७० मे इन्होने अपना हिस्सा अलग करा लिया था, परन्तु चारही पॉच वष मे जो कुछ पाया सब खो बठे। लगभग १४, १५ वष वह इस पथ्वी पर इस प्रकार से रहे कि न तो इनके पास कोई जायदाद थी और न कुछ द्रव्य। कभी कभी यह अवस्था तक हो गई कि चबना खाकर दिन काट,दिया, परन्तु उदार-प्रकृति बीर हरिश्चन्द्र की दातव्यता कभी बन्द नही हुई। आज पैसे पैसे के लिये कष्ट उठा रहे हैं, और कल कहीं से कुछ द्रव्य आजाय तो फिर उसकी रक्षा नहीं, वह भी वैसेही पानी की भाँति बहाया जाता, दो ही तीन दिन मे साफ हो जाता। बहुत कुछ धनहीनता से कष्ट पाने पर भी इन्हें धन न रहने का कुछ दु ख न होता, सिवाय उस अवस्था के जब कि हाथ मे धन न रहने से किसी दयापात्र वा किसी सज्जन का क्लेश दूर न कर सकते, अथवा कोई धनिक इनके आगे अभिमान करता। ऋण इनके जीवन का साथी था। ऋण करना और व्यय करना। परतु आश्चर्य यह है कि न तो मरने के समय अपने पास कुछ छोड मरे और न कुछ भी उचित ऋण देने बिना बाकी रह गया! इनकी इस दशा पर महाराज काशिराज ने जो दोहा लिखा था हम उसे उद्धृत कर देते हैं—

"यद्यपि आपु दरिद्र सम, जानि परत त्रिपुरार।
दीन दुखी के हेतु सोइ, दानी परम उदार॥"

—— ० ——

लेखन शक्ति

लेखनशक्ति इनकी आश्चर्य थी, क़लम कभी न रुकता। बातें होती जाती हैं क़लम चला जाता है। डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र ने इनकी यह लीला देखकर इनका नाम Writing Machine (लिखने की कल) रक्खा था। उर्दू अँगरेज़ी वालो से कई बेर बाज़ी लगा कर हिन्दी लिखने मे जीता था। सब से बढ़कर आश्चर्य यह था कि इतना शीघ्र लिखने पर भी अक्षर इनके बड़े सुन्दर

श्रौर साँचे मे ढले से होते थे। नागरी श्रौर श्रँगरेजी के श्रक्षर बहुत सुन्दर बनते थे। इसके श्रतिरिक्त महाजनी, फारसी, गुजराती, बँगला श्रौर श्रपने बनाए नवीन श्रक्षर लिख सकते थे। क़लम दावात श्रौर काग़जो का बस्ता सदा उनके साथ चलता था। दिन भर लिखने पर भी सतोष न था, रात को उठ उठकर लिखा करते। कई बार ऐसा हुश्रा कि रात को नींद खुली श्रौर कुछ कविता लिखनी हुई, क़लम दावात नहीं मिली तो कोयले या ठीकरे से दीवार पर लिख दिया, सवेरे हमलोग उसकी नकल कर लाए। कितनी ही कविता स्वप्न मे बनाते थे, जिनमे से कभी कभी कुछ याद श्राने से लिख भी लेते थे। 'प्रेमतरङ्ग' मे एक लावनी ऐसी छपी है। इस लावनी को विचारपूर्वक देखिए तो सपने की कविता श्रौर जागने पर पूर्ति जो की है वह स्पष्ट विदित होती है। काग़ज क़लम दावात का कुछ विशेष विचार न था, समय पर जैसी ही सामग्री मिल जाय वही सही। टूटे कलम से तथा कुछ न प्राप्त होने पर तिनके तक से लिखा करते थे, परन्तु श्रक्षर की सुघरता नहीं बिगडती थी।

—— o ——

श्राशु कविता

कविताशक्ति इनकी विलक्षण थी। कई बेर घडी लेकर परीक्षा की गई कि चार मिनिट के भीतर ही समस्या पूर्ति कर लेते थे। बडे बडे समाजो श्रौर बडे बडे दर्बारो मे इस प्रकार समस्यापूर्ति करना सहज न था। इतने पर श्राधिक्य यह कि किसी से दबते न थे, जो जी मे श्राता था उसे प्रकाश कर देते थे। उदयपुर महाराणा जी के दर्बार मे बैठकर निम्न लिखित समस्यापूर्ति का करना कुछ सहज काम न था—

राधाश्याम सेवै सदा वृन्दावन बास करै,
रहे निहचिन्त पद श्रास गुरुवर के।
चाहै धनधाम ना श्राराम सो है काम हरिचन्दजू,
भरोसे रहै नन्दराय घर के॥
एरे नीच धनी! हमे तेज तू दिखावे कहा,
गज परवाही नाहिं होयँ कबौं खरके।

होइ लै रसाल तू भलेई जगजीव काज,
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतरु के॥ १॥

काशिराज के दर्बार मे एक समस्या किसीने दी थी, किसी से पूर्ति न हुई, ये आगए। महाराज ने कहा "बाबू साहब, इस समस्या की पूर्ति आप कीजिए, किसी कवि से न हो सकी"। इन्होंने तुरन्त लिखकर सुना दी, मानो पहिले ही से याद थी। कवियो को बुरा लगा। एक बोल उठे "पुराना कवित्त बाबू साहब को याद रहा होगा"। बस इन्हें क्रोध आगया, दस बारह कवित्त तुरन्त बनाते गए और कविजी से पूछते गए "क्यो कविजी! यह भी पुराना है न?" अन्त मे काशिराज के बहुत रोकने पर रुके। इनके इन्हीं गुणो से काशिराज इनपर मोहित थे। इनसे अत्यन्त स्नेह करते थे। काशिराज को सोमवार का दिन घातवार था, उस दिन वह किसी से नहीं मिलते थे। एक बेर इन्होने भी लिख भेजा कि "आज सोमवार का दिन है इससे मैं नहीं आया"। काशिराज ने उत्तर मे यह दोहा लखा—

"हरिश्चन्द्र को चन्द्र दिन तहाँ कहा अटकाव।
आवन को नहि मन रह्यौ इहौ बहाना भाव॥"

इस के अक्षर अक्षर से स्नेह टपकता है। सुप्रसिद्ध गट्टू लाल जी इन की समस्यापूर्ति पर परम प्रसन्न हुए थे। वृन्दाबनस्थ श्री शाह कुन्दनलाल जी की समस्या पर इन की पूर्ति और इन की समस्या पर उन की पूर्ति देखने योग्य है। काशिराज के पौत्र के यज्ञोपवीत के उपलक्ष मे "यज्ञोपवीत परम पवित्र" पर कई श्लोक बडे धूमधाम के कोलाहल के समय बात की बात मे बनाए थे। केवल समस्या पूर्ति ही तत्काल नहीं करते थे, ग्रन्थ रचना मे भी यही दशा थी। 'अन्धेर नगरी' एक दिन मे लिखी गई थी। 'विजयिनी विजय वजयन्ती' टाउनहाल की सभा के दिन लिखी गई थी। बलिया का लेकचर और हिन्दी का लेकचर (पद्य-मय) एक दिन मे लिखा गया। ऐसे ही उनके प्राय काम समय पर ही हुआ करते थे, परन्तु आश्चर्य यह है कि उतनी शीघ्रता मे भी त्रुटि कदाचित ही होती रही हो। देशहित नसो मे भरा हुआ था। कदाचित् ही कोई ग्रन्थ इनके ऐसे होगे जिसमे किसी न किसी प्रकार से इन्हो ने देशदशा पर अपना फफोला न निकाला हो। कहाँ धर्मसम्बन्धी कविता "प्रबोधिनी" और कहाँ "बरसत सब ही बिधि बेबसी

अब तौ जागो चक्रधर"। अपने बनाए ग्रन्थो मे निम्नलिखित ग्रन्थ इन्हें विशेष रुच ते थे—

काव्यो मे—प्रेमफुलवारी
नाटको मे—सत्यहरिश्चन्द्र, चन्द्रावली
धर्म सम्बन्धी मे—तदीयसर्वस्व
ऐतिहासिक मे—काश्मीर कुसुम (इसमे बडा परिश्रम किया था)
देशदशा मे—भारतदुदशा।

एक दिन एक कवित्त बनाया। जिस के भावो के विषय मे उन का विचार यह था कि ये नए भाव हैं, परन्तु मैने इन्हीं भावो का एक कवित्त एक प्राचीन सग्रह मे देखा था, उसे दिखाया, इन्होने तुरन्त उस अपने कवित्त को (यद्यपि उसमे प्राचीन कवित्त से कई भाव अधिक थे) फाड डाला और कहा "कभी कभी दो हृदय एक हो जाते हैं। मैने इस कवित्त को कभी नहीं देखा था, परन्तु इस कवि के हृदय से इस समय मेरा हृदय मिल गया, अत अब इस कवित्त के रहने की कोई आवश्यकता नहीं"। वह प्राचीन कवित्त यह था।—

"जैसी तेरी कटि है तू तैसी मान करि प्यारी,
जैसी गति तैसी मति हिय तें विसारिए।
जैसी तेरी भौंह तैसे पन्थ पै न दीजै पाँव,
जैसे नैन तैसिएँ बडाई उर धारिए॥
जैसे तेरे ओठ तैसे नैन कीजिए—न, जैसे,
कुच तैसे बैन मुख तें न उचारिए।
एरी पिकबैनी! सुनु प्यारे मन मोहन सो,
जैसी तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिए॥ १॥"

उनका कथन था कि "जैसा जोश और जैसा जोर मेरे लेख मे पहिले था वैसा अब नहीं है, यद्यपि भाषा विशेष प्रौढ और परिमार्जित होती जाती है, तथापि वह बात अब नहीं है"। वास्तव मे सन ७३।७४ के लगभग के इन के लेख बडे ही उमङ्ग से भरे और जोश वाले होते थे। यह समय वह था जब कि ये प्राय राम-कटोरा के बाग मे रहते थे। अस्तु, इन की इस अलौकिक शक्ति तथा इन के ग्रन्थो की रचना पर आलोचना की जाय तो एक बडा ग्रन्थ बन जाय।

—— o ——

ग्रन्थ रचना

यह हम पहिले कह आए है कि जिस समय इन्होने हिन्दी की ओर ध्यान दिया, उस समय तक हिन्दी गद्य मे कुछ न था। अच्छे ग्रन्थो मे केवल राजा लक्ष्मणसिंह का शकुन्तलानुवाद छपा था और राजा शिवप्रसाद के कुछ ग्रन्थ छपे थे। इन्होने पहिले पहिल शृङ्गार रस की कविता करनी आरम्भ की और कुछ धम सम्बन्धीय ग्रन्थ लिखे। उस समय कुछ निज रचित और कुछ दूसरो के लिखे ग्रन्थ तथा कुछ सग्रह इन्होने छपवाए। 'कार्तिक कम विधि', 'मागशीर्ष महिमा', 'तहक़ीकात पुरी की तहक़ीक़ात', 'पञ्चकोशी के मार्ग का बिचार', 'सुजान शतक', 'भागवत शङ्का निरासवाद' आदि ग्रन्थ सन् १८७२ के पहिले छपे। इसी समय 'फूलो का गुच्छा' लावनियो का ग्रन्थ बनाया। उस समय बनारस मे बनारसी लावनीबाज़ की लावनियो का बडा चर्चा था। उसी समय 'सुन्दरी तिलक' नामक सवैयो का एक छोटा सा सग्रह छपा। तब तक ऐसे ग्रन्थो का प्रचार बहुत कम था। इस ग्रन्थ का बडा प्रचार हुआ, इसके कितने ही सस्करण हुए, बिना इनकी आज्ञा के लोगो ने छापना और बेचना आरम्भ किया, यहाँ तक कि इनका नाम तक टाइटिल पर छोड दिया। परन्तु इसका उन्हें कुछ ध्यान न था। अब एक सस्करण खड्गविलास प्रेस मे हुआ है जिसमे चौदह सौ के लगभग सवैया हैं, परन्तु इन सवैयों का चुनाव भारतेन्दु जी के रुचि के अनुसार हुआ या नहीं यह उनकी आत्मा ही जानती होगी। 'प्रेमतरङ्ग' और 'गुलज़ार पुर बहार' के भी कई सस्करण हुए, जो एक से दूसरे नहीं मिलते, जिनमे से खड्गविलास प्रेस का सस्करण सब से बढ गया है। इस प्रकार कुछ काल तक चलने पर ये यथाथ मे गद्य साहित्य की ओर झुके। 'मैगज़ीन' के प्रकाश के अतिरिक्त पहिले नाटको ही के ओर रुचि हुई। सन् १८६८ ई० मे रत्नावली नाटिका का अनुवाद आरम्भ किया था, पर वह अधूरा रह गया। इससे भी पहिले 'प्रवास नाटक' लिखते थे, वह भी अधूरा ही रह गया। सब से पहिला नाटक 'विद्या सुन्दर', फिर 'वैदिकी हिंसा हिसा न भवति', फिर 'धनञ्जय विजय' और फिर 'कर्पूर मजरी'। 'कर्पूर मञ्जरी की भाषा सरल भाषा की टकसाल कहने योग्य है। इसी समय 'प्रेमफुलवारी' भी बनी। इस समय वास्तव मे ये 'प्रेम फुलवारी' के पथिक थे, अत इसकी कविता भी कुछ और ही हुई है। इसके पीछे 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली नाटिका' बनी और पूरे नाटकों

मे से सबसे अन्तिम 'नीलदेवी' तथा 'अन्धेर नगरी' है और अधूरे मे 'सती प्रताप' तथा 'नव मल्लिका'। 'नव मल्लिका' को महा नाटक बनाना चाहते थे और उसके पात्रो तथा अङ्को की सूची बना ली थी, परन्तु मूल नाटक थोडा ही सा बना था कि रह गया। हिन्दी नाटको के अभिनय कराने का भी इन्होने बहुत कुछ यत्न किया, स्वय भी सब सामान किया था, और भी कई कम्पनियो को उत्साहित कर अभिनय कराया था। इनके बनाए 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'वदिकी हिंसा', 'अन्धेरनगरी' और 'नीलदेवी' का कई बेर कई स्थानो पर अभिनय हुआ है। उपन्यासो की ओर पहिले इनका ध्यान कम था। इनके अनुरोध और उत्साह से पहिले पहिल 'काद-म्बरी' और 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद हुआ, स्वय एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था जिसका कुछ अश 'कविवचनसुधा' में छपा भी था। नाम उसका था 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती'। इसमे वह अपना चरित्र लिखना चाहते थे। अन्तिम समय मे इस ओर ध्यान हुआ था। 'राधा रानी', 'स्वर्णलता' आदि उन्हीं के अनुरोध से अनुवाद किए गए। 'चन्द्रप्रभा और पूणप्रकाश' को अनुवाद कराके स्वय शुद्ध किया था। 'राणा राजसिंह' को भी ऐसा ही करना चाहते थे। अनुवाद पूरा हो गया था, प्रथम परिच्छेद स्वय नवीन लिखा, आगे कुछ शुद्ध किया था। नवीन उपन्यास 'हमीरहठ' बडे धूम से आरम्भ किया था, परन्तु प्रथम परिच्छेद ही लिखकर चल बसे। इनके पीछे इसके पूण करने का भार स्वर्गीय लाला श्रीनिवासदास जी ने लिया और उनके परलोक-गत होने पर पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने, परन्तु सयोग की बात है कि ये भी कैलाशवासी हुए और कुछ भी न लिख सके। यदि भारतेन्दु जी कुछ दिन और भी जीवित रहते तो उपन्यासो से भाषा के भण्डार को भर देते क्योकि अब उनकी रुचि इस ओर फिरी थी। यहीं पर हमे यह भी लिख देना आवश्यक जान पडता है कि इनके ग्रन्थो मे तीन प्रकार के ग्रन्थ हैं—(१) आदि से अन्त तक अपने लिखे, (२) कुछ अपना लिखा और कुछ दूसरो से लिखवाया ("नाटक" नामक पुस्तक मे ऐसा ही है), (३) दूसरे से अनुवाद कराया स्वय शुद्ध किया हुआ (गो महिमा, चन्द्र-प्रभा-पूर्ण प्रकाश आदि)। इनके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जो उन्होने अधूरे छोड़े थे और फिर औरो के द्वारा पूरे होकर छपे (दुर्लभबन्धु, सतीप्रताप, राजसिंह आदि)। एकाध ऐसे भी हैं जो उनके हुई नहीं हैं, धोखे से प्रकाशक ने उनके नाम से छाप दिया (माधुरी रूपक)। पहिले को छोड शेष ग्रन्थो की भाषा आदि मे

जो भिन्नता कहीं कहीं पाई जाती है वह स्वाभाविक है। 'चन्द्रावली नाटिका' मे अपने तरङ्ग के अनुसार कहीं खडी बोली और कहीं व्रजभाषा लिखकर कवियो की स्वेच्छाचरिता प्रत्यक्ष कर दिया है। इसको पूरी पूरी व्रजभाषा मे इनके मित्र राव श्रीकृष्णदेवशरण सिंह (राजा भरतपुर) ने किया था और सस्कृत अनुवाद पण्डित गोपाल शास्त्री उपासनी ने। इस नाटिका के अभिनय की इनकी बडी इच्छा थी, परन्तु वह जी ही मे रह गई। एक बेर लिखने के पीछे उसे ये पुनर्वार लिखते कभी नही थे और प्राय प्रूफ के अतिरिक्त पुनरावलोकन भी नहीं करते थे, तथाच प्रूफ मे भी प्राय कापी से कम मिलाते थे, योंही प्रूफ पढ जाते थे। इन कारणो से भी कहीं कहीं कुछ भ्रम हो जाना सम्भव है। अस्तु, फिर प्रकृत विषय की ओर चलिए। धर्म सम्बन्धीय ग्रन्थो की ओर तो इनकी रुचि बचपन ही से थी, 'कार्तिक कर्म विधि', 'कार्तिक नैमित्तिक कर्म बिधि', 'मार्गशीष महिमा' "वैशाख माहात्म्य' 'पुरुषोत्तम मास विधान', 'भक्ति सूत्र वैजयन्ती', 'तदीय सर्वस्व' आदि ग्रन्थ प्रमाण है। धर्म के साथ ऐतिहासिक खोज पर भी ध्यान था ('वैष्णवसर्वस्व', 'वल्लभीय सर्वस्व' आदि)। इस इच्छा से कि नाभा जी के 'भक्तमाल' मे जिन भक्तो का नाम छूटा है या जो उनके पीछे हुए हैं उनके चरित्र सग्रह हो जायँ, 'उत्तराध भक्तमाल' बनाया। धर्म के विषय मे उनके कैसे विचार थे इसका कुछ पता 'वैष्णवता और भारतवर्ष' से लग सकता है। धर्म विषयक जानकारी इनकी अगाध थी। एक बेर स्वय कहते थे कि इस विषय पर यदि कोई सुनने वाला उपयुक्त पात्र मिले तो हम भारतीय धर्म के रहस्यो पर दो वर्ष तक अनवरत व्याख्यान दे सकते हैं। सस्कृत तथा भाषा के कवियो के जीवन चरित्र भी इन्हें बहुत विदित थे। सब धर्मों की नामावली तथा उनके शाखा प्रशाखा का वृक्ष, तथा सब दर्शनो और सब सम्प्रदायो के ब्रह्म, ईश्वर, मोक्ष परलोक आदि मुख्य मुख्य विषयो पर मतामत का नक़शा वह बनाते थे जो अधूरा अप्रकाशित रह गया। इस थोडे ही लिखे ग्रन्थ से उन की जानकारी और विद्वत्ता को पूर्ण परिचय मिलता है। यह सब अधूरे और अप्रकाशित ग्रन्थ 'खड्ग-विलास प्रेस' सेवन कर रहे हैं, सम्भव है कि किसी समय रसिक समाज का कौतूहल निवारण कर सकेंगे। इतिहास और पुरातत्वानुसन्धान की ओर इनका पूरा पूरा ध्यान रहा। जिस विषय को लिखा पूरी खोज और पूरे परिश्रम के साथ लिखा। 'काश्मीर कुसुम', 'बादशाह दर्पण', 'कवियो के जीवन चरित्रादि' इस के प्रमाण हैं। भाषारसिक डाक्टर ग्रिअर्सन ने न के सगुण पर मोहित होकर इन्हें स्पष्ट ही "The only critic of Nor-

thern India" लिखा है। इतिहास की ओर इनका इतना अधिक झुकाव था कि नाटक, कविता, तथा धर्म सम्बन्धी ग्रन्थादि मे जहाँ देखिएगा कुछ न कुछ इसका लपेट अवश्य पाइएगा। कविता के विषय मे हम ऊपर कई स्थलो पर बहुत कुछ लिख चुके हैं, यहाँ केवल इतना ही लिखना चाहते हैं कि शृङ्गार-प्रधान भगवल्लीला के अतिरिक्त इनका उरझान जातीय गीत की ओर अधिक था। यदि विचार कर देखा जाय तो क्या धर्म सम्बन्धी, क्या राजभक्ति (राजनैतिक), क्या नाटक क्या स्फुट प्राय सभी चाल की कविता मे जातीयता का अश वर्तमान मिलेगा। हृदय का जोश उबला पडता है, विषाद की रेखा अलक्षित भाव से वर्तमान है, नित्य के ग्राम्य गीत (कजली, होली, आदि) मे भी जातीय सङ्गीत प्रचलित करना चाहते थे। "काहे तू चौका लगाए जयचँदवा", "टूटे सोमनाथ के मन्दिर केहू लागै न गुहार", "भारत मे मची है होरी", "जुरि आए फाक़े मस्त होरी होय रही", आदि प्रमाण हैं। इस विषय मे एक सूचना भी दी थी कि ऐसे जतीय सङ्गीत लोग बनावें, हम इनका सग्रह छापेंगे। उर्द की स्फुट कविता के अतिरिक्त हास्यमय "कानून ताजीरात शौहर" बनाया, बँगला मे स्फुट कविता के अतिरिक्त "विनोदिनी" नाम की पुस्तिका बनाई थी, सस्कृत मे "श्रीसीताबल्लभ स्तोत्र" आदि बनाए, अग्रेजी मे एज्यूकेशन कमीशन का साक्षी ग्रन्थ रूप मे लिखा (स्फुट कविता मेगजीन मे छपी हैं) भक्तसर्वस्व गुजराती अक्षरों मे छपा, गुजराती कविता इनकी बनाई "मानसोपायन" में छपी है, पञ्जाबी कविता "प्रेमतरङ्ग" मे छपी हैं, महाराष्ट्री मे "प्रेमयोगिनी" का एक अङ्क ही लिखा है, एक वष कार्तिकस्नान शरीर की रुग्नता के कारण नहीं कर सके तो नित्य कुछ कविता बनाया उसका नाम 'कार्तिकस्नान" रक्खा, राजनैतिक, सामाजिक, तथा स्फुट विषयो पर ग्रन्थ और लेख जो कुछ इन्हो ने लिखे थे और उन पर समय समय पर जो कुछ आन्दोलन होता रहा या उनका जो प्रभाव हुआ उनका वर्णन इस छोटे लेख मे होना असम्भव है। हम तो इस विषय मे इतना भी लिखना नहीं चाहते थे, किन्तु हमारे कई मित्रो ने आग्रह करके लिखवाया। वास्तव मे यह विषय ऐसा है कि उनके प्रत्येक ग्रन्थो का पृथक पृथक वर्णन किया जाय कि वे कब बने, क्यो बने, कैसे बने, क्या उनका प्रभाव हुआ, कितने रूप उनके बदले, कितने सस्करण हुए और उनमे क्या परिवर्तन हुआ और अब किस रूप मे हैं तब पाठको को पूरा आनन्द आ सकता है। अस्तु हमने मित्रों के आग्रह से आभास मात्र दे दिया।

——o——

हिन्दी तथा वैष्णव परीक्षा

हिन्दी की एक परीक्षा इन्होने प्रचलित की थी जो थोडे ही दिन चलकर बन्द हो गई। इस पर एक रिपोट इन्होने राजा शिवप्रसाद इन्स्पेक्टर ग्राफ स्कूल्स् के नाम लिखी थी जो देखने योग्य है। उस रिपोर्ट से इनके हृदय का उमङ्ग और हिन्दी यूनीवर्सिटी बनाने की बासना तथा देशबासियो के निरुत्साह से उदासीनता प्रत्यक्ष झलकती है। एक परीक्षा वैष्णव ग्रन्थों की भी जारी करनी चाही परन्तु कुछ हुआ नहीं। उसकी सूचना यहाँ प्रकाशित होती है।

श्रीमद्वैष्णवग्रंथों में

परीक्षा

वैष्णवो के समाज ने निम्न लिखित पुस्तको मे तीन श्रेणियो मे परीक्षा नियत की है और १५०) प्रथम के हेतु और १५०) द्वितीय के हेतु और ५०) तृतीय के हेतु पारितोषिक नियत है जिन लोगों को परीक्षा देनी हो काशी मे श्रीहरिश्चन्द्र गोकुल-चन्द्र को लिखें नियत परीक्षा तो स० १९३२ के वैशाख शुद्ध ३ से होगी पर बीच मे जब जो परीक्षा देना चाहे दे सकता है।

श्रेणी	श्रीनिम्बार्क	श्रीरामानुज	श्रीमध्व	श्रीविष्णुस्वामि
प्रविष्ट	वेदान्त रत्न मजूषा, वेदान्त रत्नमाला, सुरद्रुम मजरी	यतीन्द्रमत दीपिका, शतदूषणी	वेदान्त रत्न-माला, तत्व प्रकाशिका	षोडश ग्रन्थ, षोडशबाद, सप्रदाय प्रदीप
प्रवीण	वेदान्त कौस्तुभ और प्रभा, षोडशी रहस्य, पच कालानुष्ठान	श्रुति सूत्र तात्पर्य्य निर्णय, प्रस्थान त्रय का भाष्य	भाष्य सुधा, न्यायामृत	विद्वन्मडल स्वर्ण सूत्र, निबन्ध श्रावण भग वाग्रहस्त, पडित कर्भिदिपाल, वहिर्मुख मुख मद्दन
पारङ्गत	अध्यास गिरि वज्र सेतुका, जान्हवी मुक्ता वली	वेदान्ताचार्य्य का लघु भाष्य, वहृच्छतदूषणी	सहस्र दूषिणी	अणु भाष्य, भाष्य प्रदीप, भाष्य प्रकाश, प्रमेय रत्नार्णव[1]

—— o ——

भारतेन्दु की पदवी

इनके गुणो से मोहित होकर इनका कैसा कुछ मान देशीय और विदेशीय सज्जन इनके सामने तथा इनके पीछे करते थे यह लिखने की आवश्यकता नहीं। हम केवल दो चार बात इस विषय मे लिख देना चाहते हैं। सन् १८८० ई० के 'सारसुधानिधि' मे एक लेख छपा कि इन्हें 'भारतेन्दु' की पदवी देना चाहिए, इसको एक स्वर से सारे देश ने स्वीकार कर लिया और सब लोग इन्हें भारतेन्दु लिखने लगे, यहाँ तक कि भारतेन्दु जी इनका उपनाम ही हो गया। इस पदवी को न केवल

१ यदि रश्मि मे परीक्षा दे तो ५००) रु० पारितोषिक मिलै।

इस देश के लोगो ही ने स्वीकार किया, वरञ्च योरप के लोग भी बराबर इन्हें भारतेन्दु लिखने लगे। विलायत के विद्वान इन्हें मुक्तकठ से Poet Laureate of Northern India (उत्तरीय भारत के राजकवि) मानते और लिखते थे। एज्यूकेशन कमीशन के साक्षी नियुक्त ए। लार्ड रिपन के समय मे राजा शिवप्रसाद से बिगडने पर हजारो हस्ताक्षर से गवर्न्मेंन्ट की सेवा मे मेमोरियल गया था कि इनको लेजिस्लेटिव काउन्सिल का मेम्बर चुनना चाहिए। बलिया निवासियो ने इनके बनाए 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक का अभिनय किया था, उस समय इन्हें भी बुलाया था। बलिया मे इनका बडा सतकार हुआ था, इनका स्वागत धूमधाम से किया गया था, ऐड्रेस दिया गया था। इनके इस सम्मान मे स्वय जिलाधीश राबर्ट्स साहब भी सम्मिलित थे। इनकी बीमारियो पर कितने ही स्थानो पर प्राथनाएँ की गई हैं, आरोग्य होने पर कितने ही जलसे हुए हैं, कितने 'क़सीदे' बने हैं और ऐसी ही कितनी ही बातें हैं।

—— o ——

नए चाल के पत्र

हिन्दी मे कितने ही चाल के पत्र, कितनी ही चाल की नई बातें इन्होने चलाईं। प्रतिवर्ष एक छोटी सी सादी नोट बुक छपवाकर अपने मित्रो मे बाँटते थे जिस पर वर्ष की अंग्रेजी जन्त्री रहती थी और "हरिश्चन्द्र को न भूलिए", "Forget me not" छपा रहता, तथा और भी तरह तरह के प्रेम तथा उपदेश वाक्य छपे रहते थे। जब से इन्होने १०० वर्ष की जन्त्री (वर्ष मालिका) छपवा कर प्रकाशित की तब से इसका छपना बन्द हुआ। इस नोट बुक की कमिश्नर कारमाइकल साहब ने बडी सराहना की है। पत्रो के लिये प्रत्येक बार के अनुसार जुदा जुदा रङ्ग के काग़ज पर जुदा जुदा शीषक छापकर काम मे लाते थे, यथा—

रविवार को गुलाबी काग़ज पर—

"भक्त कमल दिवाकराय नम"

"मित्र पत्र बिनु हिय लहत छिनहू नहिं विश्राम।
प्रफुलित होत न कमल जिमि बिनु रवि उदय ललाम॥"

सोमवार को श्वेत काग़ज़ पर—

"श्रीकृष्णचन्द्राय नम"

"बन्धुन के पत्रहिं कहत अध मिलन सब कोय ।
आपहु उत्तर देहु तौ पूरो मिलनो होय ॥"

सोमवार का यह दोहा भी छपवाया था—

"ससिकुल कैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज ।
श्री मुखचन्द्र चकोर श्री, कृष्णचन्द्र महराज ॥"

मङ्गल को लाल काग़ज़ पर—

"श्रीवन्दाबन सावभौमाय नम"

"मङ्गल भगवान विष्णु मङ्गल गरुडध्वजम् ।
मङ्गल पुण्डरीकाक्ष मङ्गलायतनु हरि ॥"

बुध को हरे काग़ज़ पर—

"बुधराधित चरणाय नम"

"बुध जन दपण मे लखत दृष्ट वस्तु को चित्र ।
मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिम्ब विचित्र ॥"

गुरुवार को पीले काग़ज़ पर—

"श्रीगुरु गोविन्दायनम"

"आशा अमृत पात्र प्रिय बिरहातप हित छत्र ।
बचन चित्र अवलम्बप्रद कारज साधक पत्र ॥"

शुक्रवार को सफेद काग़ज़ पर—

"कविकीर्ति यशसे नम"

"दूर रखत करलेत आवरन हरत रखि पास ।
जानत अन्तर भेद जिय पत्र पथिक रसरास ॥"

عقدہ کشاے حال دل دوستدار ہے
تقدیر کی تصویر ہے حرف میں یار ہے

शनिवार को नीले कागज़ पर—

"श्रीकृष्णायनम"

"और काज सनि लिखन मैं होइ न लेखनि मन्द ।
मिलै पत्र उत्तर अवसि यह बिनवत हरिचन्द ॥"

इनके अतिरिक्त और भी प्रेम तथा उपदेश वाक्य छपे हुए कागजो पर पत्र लिखते थे। इनके सिद्धान्त वाक्य अर्थात् मोटो निम्नलिखित थे—

(१) "यतो धमस्तत कृष्णो यत कृष्णस्ततो जय"
(२) "भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यद्विडम्बनम्"
(३) "The Love is heaven and heaven is love"

इनके सिद्धान्त चिन्ह अर्थात् मोनोग्राम भी थे[1]।

लिफाफो के ऊपर पत्र के आशय को प्रगट करने वाले वाक्यो के 'वेफर' छपवा रक्खे थे, जिन्हें यथोचित साट देते थे। इन पर "उत्तर शीघ्र", "ज़रूरी", "प्रेम" आदि वाक्य छपे थे। ऐसी कितनी ही तबीयतदारी की बातें रात दिन हुआ करती थीं।

—— ० ——

स्वभाव

स्वभाव इनका अत्यन्त कोमल था, किसी का दुःख देख न सकते थे। सदा प्रसन्न रहते थे। क्रोध कभी न करते। परन्तु जो कभी क्रोध आ जाता तो उसका ठिकाना भी न था। जिन महाराज काशिराज का इन पर इतना स्नेह था और जिन पर ये पूर्ण भक्ति रखते थे, तथाच जिनसे इन्हें बहुत कुछ आर्थिक सहायता मिलती थी, उनसे एक बात पर बिगड गए और फिर यावज्जीवन उनके पास न गए महारानी विक्टोरिया के छोटे बेटे ड्यूक आफ आलबेनी की अकाल मृत्यु पर इन्हो ने शोक समाज करना चाहा। साहब मैजिस्ट्रेट से टाउनहाल माँगा, उन्हो ने आज्ञा दी, सभा की सूचना छपकर बँट गई, परन्तु दिन के दिन राजा शिवप्रसाद ने साहब मैजिस्ट्रेट से न जाने क्या कहा सुना कि उन्हो ने सभा रोक दी और टाउन

---

१ अँग्रेजी एच (H) नाम का पहिला अक्षर, एच मे जो चार पाई है वह चार खम्भे अर्थात् चौखम्भा एच के ऊपर त्रिशूल अर्थात् काशी, श्री हरि अर्थात् भगवन् नाम भी और श्रीहरि + चन्द्र श्री हरिश्चन्द्र, चन्द्रमा के नीचे तारा है वही फारसी का है अर्थात् इनके नाम का पहिला अक्षर।

हाल देना अस्वीकार किया, लोग आ आकर फिर गए, लोगो को बड़ा क्रोध हुआ और दूसरे दिन बनारस-कालिज मे कुछ प्रतिष्ठित लोगो ने एक कमेटी की जिसमे निश्चय हुआ कि शोक-समाज कालिज मे हो, मैजिस्ट्रेट की कारवाई की रिपोट गवर्न्मेन्ट मे की जाय और राजा शिवप्रसाद को किसी सभा सोसाइटी मे न बुलाया जाय। साहब मैजिस्ट्रेट को समाचार मिला, उन्होने अपनी भूल स्वीकार की और आग्रह करके सभा टाउनहाल मे कराई। राजा साहब बिना निमन्त्रण उस सभा मे आए और उन्होने कुछ कहना चाहा, परन्तु लोगो ने इतना कोलाहल भी किया कि वह कुछ कह न सके। इस पर चिढ़कर राजा साहब ने काशिराज से इनको पत्र लिखवाया कि आपने जो राजा साहब का अपमान किया वह मानो हमारा अपमान हुआ, इसका कारण क्या है ? महाराज का अदब करके इसका उत्तर तो कुछ न लिखा, परन्तु ज़ुबानी कहला भेजा कि महाराज के लिये जैसे हम वैसे राजा साहब, हमारे अपमान से महाराज ने अपना अपमान न माना और राजा साहब के अपमान को अपना समझा, तो अब हम आपके दरबार में कभी न आवेंगे। यद्यपि ये अत्यन्त ही नम्र स्वभाव थे और अभिमान का लेश भी न था, परन्तु जो कोई इनसे अभिमान करता तो ये सहन न कर सकते। शील इनका सीमा से बढा हुआ था, कोई कितनी भी हानि करे ये कभी कुछ न कह सकते और न उसको आने से रोकते। एक महापुरुष प्राय चीजें उठा ले जाया करते। जब पकडे जाते तब दुर्गति करके इनके अनुज बाबू गोकुलचन्द्र डयोढ़ी बन्द कर देते। परन्तु जब भारतेन्दु जी बाहर से आने लगते यह साथ ही चले आते। यो ही बीसो बेर हुआ, अन्त मे भारतेन्दु जी ने भाई से कहा कि "भैया, तुम इनकी डयोढी न बन्द करो, यह शख्स क़द्र करने योग्य हैं, इस की बेहयाई ऐसी है कि इसे कलकत्ता के 'अजायब-खाने' में रखना चाहिये"। निदान फिर उनके लिये अविमुक्तद्वार ही रहा। इन्होंने अपने स्वभाव को एक कविता मे स्वय कहा हैं, उसी को हम उद्धृत करते हैं इस पर विचार करने से उनकी प्रकृति तथा चरित्र का पूरा पता लग सकता है—

"सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सो सीधे, महा बाँके हम बाकेन सो,
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह नेही नेह के,
दिबाने सदा सूरत निवानी के।

सरबस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के ।।"

हमारे इस लेख मे उर्धोक्त स्वभावो का बहुत कुछ परिचय पाठक पा चुके हैं। गुनीजनो की सेवा, चतुरो को सम्मान, कवियो की मित्रता, नम्रता तथा उग्रता, लापरवाही आदि गुणो के विषय मे कुछ विशेष कहना व्यथ है। अब केवल उक्त पद के अन्तिम भाग की समालोचना शेष है। "दिवाने सदा सूरत निवानी के" यही एक विषय है जिस पर तीव्र आलोचना हो सकती है और उसी को कोई भूषण तथा कोई दूषण की दृष्टि से देखते हैं, तथाच इनके जीवन चरित्र रचना मे यही एक प्रधान बाधक विषय रहा। वास्तव मे ऐसा कोई सभ्य देश नहीं है जो सौन्दर्योपासक न हो, परन्तु इसकी मात्रा का कुछ बढ जाना ही भूषण से दूषण तथा मनुष्य को कष्ट-कर होता है, और गुलाब मे कॉटे की तरह खटकता है। इस विषय को सोचकर उनके प्रेमी उनके चरित्र सङ्कलन मे कुछ सकुचित होते है, परन्तु उस महानुभाव उदार चरित्र को इसका कुछ भी सङ्कोच न था, क्योकि शुद्ध हृदय, शुद्ध प्रेम जो जी मे आया सच्चे जी से किया। हमलोग आगा पीछा जितना चाहे करें, परन्तु उन्होने जैसे ही यहाँ इन वाक्यो को साभिमान कहा है, वैसे ही इसके भीतर जो कुछ दुख-दायकता वा दूषण है उसे भी इस दोहे मे स्पष्ट कह दिया है—

"जगत जाल मे नित बध्यो परयों नारि के फन्द।
मिथ्या अभिमानी पतित झूठो कवि हरिचन्द ।।"

अस्तु, इस विषय मे हम केवल एक घटना का उल्लेख करके इसको यहीं छोडेंगे। एक दिन अपने कुछ अन्तरङ्ग मित्रो के साथ बैठे थे और एक वारविलासिनी भी वर्तमान थी। उसने कुछ ऐसे हावभाव कटाक्ष से देखा कि इन्हें कुछ नवीन भाव स्फुरन हुआ और तुरन्त एक कविता बनाई, और उसे उन मित्रो को सुनाकर कहा कि "हम इन सभो का सहवास विशेष कर इसीलिये करते है। कहिए यह सच्चा मजमून कसे लब्ध हो सकता था ?" निदान जो कुछ हो, उनके इस आच-रण का भला या बुरा फल उन्हीं के लिये था, दूसरो को उससे कोई हानि लाभ नहीं, और वह ससार को क्या समझते थे, और उनके आचरण किस अभिप्राय के होते थे इसे उन्हीं के वाक्य कुछ स्पष्ट कर सकते हैं। "प्रेमयोगिनी" के नान्दी-पाठ मे कहते हैं—

"जिन तृन सम किय जानि जिय, कठिन जगत जजाल ।
जयतु सदा सो ग्रन्थ कवि, प्रेमजोगिनी बाल ॥"

आगे चलकर उसी नाटिका मे सूत्रधार कहता है—

"क्या सारे ससार के लोग सुखी रहै और हमलोगो का परमबन्धु, पिता, मित्र, पुत्र, सब भावनाओ से भावित, प्रेम की एक मात्र मूर्ति, सौजन्य का एक मात्र पात्र, भारत का एक मात्र हित, हिन्दी का एक मात्र जनक, भाषा नाटको का एक मात्र जीवनदाता, हरिश्चन्द्र ही दुखी हो ? (नेत्र मे जल भरकर) हा सज्जन शिरोमणे ! कुछ चिन्ता नहीं, तेरा तो बाना है कि कितना भी दुख हो उसे सुख ही मानना, लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति का परित्याग कर दिया है और जगत से विपरीत गति चलके तूने प्रेम की टकसाल खडी की है । क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अङ्क मे रखकर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते है और तू ससारी वैभव से सुचित नहीं है, तुझे इससे क्या, प्रेमी लोग जो तेरे है और तू जिन्हें सरबस है, वे जब जहाँ उत्पन्न होगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन सहन को अपनी जीवन पद्धति समझेंगे । (नेत्र से आँसू गिरते हैं) मित्र ! तुम तो दूसरो का अपकार और अपना उपकार दोनो भूल जाते हो, तुम्हें इनकी निन्दा से क्या ? इतना चित्त क्यो क्षुब्ध करते हो ? स्मरण रक्खो ये कीडे ऐसे ही रहैंगे और तुम लोकवहिष्कृत होकर भी इनके सिर पर पैर रखके बिहार करोगे । क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए—'कहैंगे सबैही नैन नीर भरि भरि पाछें प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायगी' मित्र ! मैं जानता हूँ कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है ।"

अस्तु, अब इस विषय मे अधिक न लिखकर इसका विचार हम सहृदय पाठको ही पर छोडते हैं । अब अन्तिम पद पर "सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के" ध्यान दीजिए जिसका यह साभिमान वाक्य है कि—

"चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत के नेम ।
पै दृढ श्री हरिचन्द को टरै न अविचल प्रेम ॥"

उस की रसिकता और प्रेम का क्या कहना है । इनका हृदय प्रेमरङ्ग से रँगा हुआ था । प्राय देखा गया है कि जिस समय उनके हृदय मे प्रेम का आवेश आता था, देहानुसन्धान न रह जाता, उस प्रेमावस्था मे कितने पदार्थ लोग इनके सामने

आज्ञा नहीं हुई . यद्यपि ससार के कुरोगो से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त थे ही, किन्तु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त तुम्हारा—हरिश्चन्द्र— .

रोग पूरा पूरा निवृत्त न होने पाया, चलने फिरने लगे कि फिर शरीर की चिन्ता कौन करता है, अविरल लिखने पढने का परिश्रम चलने लगा। योंही कुछ दिनो लस्टम फस्टम चले, कि मरने से एक वष पहिले श्वास और खाँसी का वेग बढा, समझा कि दमा हो गया है। शरीर नित्य नित्य क्षीण होने लगा, यहाँ तक कि थोडे दिन पहिले चलने फिरने की शक्ति इतनी घट गई कि पालकी पर बाहर निकलते थे। लोग दमा के धोखे मे रह गए, वास्तव मे क्षयरोग हो गया था। अधिक पान खाने के कारण कफ के साथ रक्त का तो पता लगता न था, केवल श्वास कास की दवा होती थी। निदान अन्तिम समय बहुत निकट आने लगा। मरने से महीना डेढ महीना पहिले इनका हृदय कुछ शाति रस की ओर अधिक फिर गया था, "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" की अन्तिम सख्याओ मे प्रकाशित शान्तरस की कविता सब इसी समय की बनी हुई हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, निम्न लिखित पद के पीछे कोई कविता नही की—

"डङ्का कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पन्थी सब तुम क्यो रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचै है तो लै किन माल लदाई।
हरीचन्द हरि पद बिनु नहिं तौ रहि जैहौ मुँह बाई॥"

इसी समय प्राय नित्य ही, वह पद्माकर कवि का निम्न लिखित कवित्त कहते और घण्टो तक रोते रह जाते थे—

"व्याध हूँ ते बिहद, असाधु हौ अजामिल लौं,
ग्राह तें गुनाही, कहौ तिन मे गिनाओगे।
स्योरी हौ, न शूद्र हौ, न केवट कहूँ को त्यो,
न गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे॥
राम सो कहत पदमाकर पुकारि तुम,
मेरे महा पापन को पार हूँ न पाओगे।
झूठो ही कलक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
(नाथ!) हौ तो साँचो हूँ कलकी ताहि कैसे अपनाओगे"॥

—o—

मृत्यु

धीरे धीरे, सन् १८८४ समाप्त हुआ। सन् १८८५ आया। दूसरी जनवरी को एकाएक भयानक ज्वर आया, ज्वर आठ पहर भोगकर उतरा कि पसली मे दर्द उठा, इस दर्द मे डाक्तर लोग जीवन का सशय करते थे, परन्तु राम राम करते यह दर्द दूर हुआ, फिर आशा हुई। तीसरे दिन खाँसी बडे जोर से आरम्भ हुई, बलग़म का बडा वेग रहा, कफ मे रुधिर दिखाई पडा, बडा कष्ट हुआ, परन्तु इससे भी छुटकारा मिला। ता० ६ जनवरी को सबेरे शरीर बहुत स्वस्थ रहा। जनाने से मजदूरिन खबर पूछने आई, आपने हँसकर कहा "हमारे जीवन नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी, देखे लास्ट नाइट कब होती है"। उसी दिन दोपहर को एक दस्त आया, काला मल गिरा, उसी समय से कुछ श्वास बढा। बस उसी समय से उन्हो ने ससार की ओर से मन को फेरा, घर का कोई सामने आता तो मुँह फेर लेते। दो बजे दिन को अपने भ्रातुष्पुत्र कृष्णचन्द्र को बुलाया, कहा अच्छे कपडे पहिन कर आओ, कपडे पहिनकर आने पर कहा "नहीं इससे भी अच्छे कपडे पहिन आओ" तुरन्त आज्ञा पालन हुई, आप आराम कुर्सी पर लेटे और बच्चे को गोद मे बिठाकर अगूर खिलाए, फिर दोनो हाथ उसके सिर पर रख कर कुछ देर तक ध्याना-वस्थित रहे और तब उसे विदाकर कहा "जाओ खेलो"। इसके पीछे सासारिक माया से कुछ वास्ता न रक्खा। श्वास बढ़ता ही गया, बेचैनी से नींद आने की इच्छा वैद्य डाक्तरो से प्रगट करते रहे। धीरे धीरे रात को नौ बज गए—समय आन पहुँचा—एकाएकी पुकार उठे "श्री कृष्ण! राधाकृष्ण! हे राम! आते हैं, मुख दिखलाओ"। कण्ठ कुछ रुकने लगा, कुछ दोहा सा कहा, परन्तु स्पष्ट न समझाई दिया, केवल इतना समझ मे आया "श्री कृष्ण   सहित स्वामिनी" —बस गरदन झुक गई, पौने दस बजे इस भारत का मुखोज्वलकारी भारतेन्दु अस्त हो गया, चारो ओर अन्धकार छा गया। बस, लेखनी अब उस दु खमय कथा को लिख नहीं सकती।

—— o ——

शोक प्रकाश

भारतवष के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक हाहाकार मच गया। काशी का तो कहना ही क्या था, पेशावर से लेकर नैपाल तक और कलकत्ते से लेकर बम्बई तक सैकडो ही स्थानो मे शोक समाज हुए। शोक प्रकाशक तार और पत्रो का ढेर लग गया, कितने ही समाचार पत्रो की ओर से अनियत पत्र प्रकाशित हुए, कितने ही शोकपत्र जन साधारण की ओर से वितरित हुए। हिन्दी समाचार पत्रो का तो कहना ही क्या था, महीनो तक कितनो ही ने शोक चिन्ह धारण किया, कितने ही शोक लेख, कितनी ही शोक कविता, कितनी ही शोक समस्या छपीं, कितने ही चित्र छपे कितने ही जीवनचरित्र छपे। अँग्रेजी, उर्दू, बँगला, गुजराती, महाराष्ट्री के कोई पत्र नहीं थे जिन्होने हार्दिक शोक प्रकाश न किया हो। चारो ओर कितने ही दिनो तक शोक ही शोक छाया रहा। भारतवष मे बहुतेरे बडे बडे लोग मरे और बहुत कुछ लोगो ने किया, परन्तु ऐसा हार्दिक शोक आज तक किसी के लिये प्रकाशित नहीं हुआ। शत्रु भी इनकी मृत्यु पर अश्रुवषरण करते थे, मित्रो की कौन कहे। राजा शिवप्रसाद से आजन्म इन से झगडा चला, परन्तु जिस समय वह मातमपुर्सी को आए थे आँखो मे आँसू भरे हुए थे, और कहते थे कि "हाय! हमारा मुकाबिला करने वाला उठ गया!" पडितलोग यह कहकर रोते थे कि क्या फिर वैश्यकुल में कोई ऐसा जन्मैगा जिससे हमलोग धमशास्त्र की व्यवस्था पर सलाह लेने जॉयगे! निदान इनका शोक अकथनीय था। इस विषय मे लाहौर के "मित्रबिलास" ने जो कुछ लिखा था उसका कुछ अश हम प्रकाशित किए देते हैं, उसीसे उस समय के शोक का पता लग जायगा—

"हाय हरिश्चन्द्र! तू हमलोगो को छोड जायगा इस बात का तो किसी को ध्यान मात्र भी न था, और अभी तक भी तेरा नाम स्मरण करके यह निश्चय नहीं होता है कि क़लम दावात लिए, 'बस्ता' सामने धरे उसमे से काग़ज़ रूपी बिखडे रत्नो को हास्यमुख के साथ एक लडी मे पिरो रहा है और सोच रहा है कि किस आशावान की झोली इससे भरूँ! 'गोदडी मे लाल' सुना करते थे, परन्तु देखे तेरे ही पास। हा! अब कौन उनको परख सकैगा और कौन उनकी माला बनावैगा?

"प्यारे हरिश्चन्द्र! काशी मे, जहाँ और बडे बडे तीथ हैं, वहाँ तू भी एक

तीथ स्वरूप ही था। काशी जी मे जाकर और तीथ पीछे स्मरण होते है, तू पहिले मन मे स्थान कर लेता था। और तीर्थो पर पाधा पुरोहित घाटियो को प्रसन्न करने, अपनी नामवरी कमाने वा दान दक्षिणा देने को यात्री लोग जाते है, पर तेरे पास सब भिक्षा ही के लिये आते थे, और किसकी भिक्षा ? प्रेम की भिक्षा दशन की भिक्षा, सत्परामश की भिक्षा ! तेरे दर्वाजे से कभी कोई विमुख नहीं गया, तू इस ससार मे इस लिये नहीं आया था कि अपना कुछ बना जावे, किन्तु इस लिये आया था कि बना बनाया भी दूसरो को सौंप दे और उनका घर भरे। तेरे चरित्रो से स्पष्ट दिखाई देता था कि तू हर घडी इस ससार को छोडने ही का ध्यान रखता था। और इसीलिये किसी ससारी लोगो की दृष्टि मे तेरी अपनी वस्तु की तूने कभी रत्तीमात्र भी पर्वा न की। यश कमाने तू आया था, वह तुझसा दूसरा कौन कमावैगा। शेष सब पदार्थों का आना जाना तूने तुल्य और एक सा समझ रक्खा था।

"प्यारे हरिश्चन्द्र ! आप के यह ससार त्यागने पर लोग शोक प्रकाश कर रहे है। परन्तु हम मे यह सामर्थ्य नहीं है। आप के हमे छोड कर चले जाने से जो कुछ हम मे बीत रही है, हम जानते नहीं कि तुमे किस नाम से पुकारे, हमे जो कुछ शोक है वह ऐसा पर्दो के पर्दों मे छिपा हुआ है कि उस का प्रकाश करना हमारे लिये असम्भव है। यह महाशय भाषा के उत्तम कवि थे इस प्रकार के वाक्य लिख कर जो लोग आप के बिछोडे पर शोक प्रकट करते हैं, वह हमारे कलेजे के टुकडे उडाते हैं, वह हमारे प्यारे हरिश्चन्द्र की हतक करते हैं, हम से यह सहन नहीं हो सकता। हम कहते है कि जो लोग प्यारे भारतेन्दु के विषय मे इतना ही जानते हैं वह चुप रहे ऐसे फीके वाक्य कह कर हरिश्चन्द्र और भारतेन्दु के चकोरो को दुख न दें।"

इन के स्मारक-चिन्ह स्थापन की चर्चा चारो ओर होने लगी, परन्तु जैसा हतभाग्य यह देश है वैसा कोई देश नहीं, चार दिन का हौसला यहाँ होता है, फिर तो कोई ध्यान भी नहीं रहता। फिर भी यह हरिश्चन्द्र ही थे कि जिन के स्मारक की कुछ चर्चा तो हुई नाम मात्र के लिये कानपूर और अलीगढ भाषासम्बंधिनी सभा मे "हरिश्चन्द्र पुस्तकालय" स्थापित हुए परन्तु वास्तविक स्मारक उदयपुर मे "हरिश्चन्द्रार्य विद्यालय" हुआ जो आज तक वर्तमान है और जिस मे कुछ धन भी सञ्चित है कि जिस से उसके चले जाने की आशा है। काशी मे इन का

स्थापित जो स्कूल है वह उस समय "चौक स्कूल" कहलाता था, परन्तु इन की मृत्यु पर उसके पारितोषिक वितरण के उत्सव मे राजा शिवप्रसाद ने प्रस्ताव किया कि 'इस स्कूल का नाम अब से इस के सस्थापक बाबू हरिश्चन्द्र के स्मारक स्वरूप "हरिश्चन्द्र स्कूल" होना चाहिए।' सभापति मिस्टर ऐडम्स (कलेक्टर) ने इस का अनुमोदन किया और तब से यह स्कूल "हरिश्चन्द्र एडेड-स्कूल" कहलाता है। हिन्दी समाचार पत्रो की ओर से "मित्रविलास" के प्रस्ताव पर इन के नाम से "हरिश्चन्द्र सम्बत्" चला। उदयपुर मे कई वर्ष तक इनके श्राद्ध समय मे "हरिश्चन्द्र सभा" होती रही, जिसमे इनके विषय मे भाषा तथा सस्कृत कविता पढी जाती थीं। द्रमोह जिला गया से कुछ दिनो तक "हरिश्चन्द्र कौमुदी" मासिक पत्रिका निकलती थी। "खडगविलास प्रेस" बाकीपुर से "हरिश्चन्द्र कला" प्रकाशित हुई, जिसमे पहिले तो उनके प्राय सब ग्रन्थ शृङखला के साथ छपे, फिर उन के सग्रहीत तथा मनोनीत ग्रन्थ छपते रहे। हिन्दी समाचार पत्रो मे प्रकाशित शोक प्रकाश तथा और शोक कविताओ के सग्रह का "हरिश्चन्द्र शोकावली" नामक एक अच्छा ग्रन्थ छपा। लखनऊ से एक सौ वष की जन्त्री "भारतेन्दु शताब्दी" नामक छपी और सन १८८८ ई० मे कविवर श्रीधर पाठक जी ने 'श्रीहरिश्चन्द्राष्टक" प्रकाशित किया, जिसके अन्तिम छप्पय के साथ हम भी इस प्रबन्ध को समाप्त करते हैं।

"जबलौ भारतभूमि मध्य आरजकुल बासा।
जबलौ आरजधम माँहि आरज बिश्वासा॥
जबलौ गुन-आगरी नागरी आरजबानी।
जबलौ आरजबानी के आरज अभिमानी॥
तबलो यह तुम्हरो नाम थिर, चिरजीवी रहिहै अटल।
नित चन्द सूर सम सुमिरिहै हरिचन्दहु सज्जन सकल॥"

इति।

— ० —

ग्रन्थों की सूची

नाटक १

१ प्रवास नाटक (अपूण, अप्रकाशित)
२ सत्य हरिश्चन्द्र
३ मुद्राराक्षस
४ विद्या सुन्दर
५ धनञ्जय विजय
६ चन्द्रावली
७ कर्पूर मञ्जरी
८ नीलदेवी
९ भारत दुर्दशा
१० भारत जननी
११ पाषण्ड बिडम्बन
१२ वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति
१३ अन्धेर नगरी
१४ बिषस्य विषमौषधम
१५ प्रेम योगिनी (अपूण)
१६ दुलभ बन्धु (अपूण)
१७ सती प्रताप (अपूण)
१८ नव मल्लिका (अपूण, अप्रकाशित)
१९ रत्नावली (अपूण)
२० मच्छकटिक (अपूण, अप्रकाशित, अप्राप्य)

आख्यायिका वा उपन्यास २

१ रामलीला (गद्य पद्य)
२ हमीरहठ (असम्पूण अप्रकाशित)
३ राजसिंह (अपूण)
४ एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती (अपूर्ण)
५ सुलोचना
६ मदालसोपाख्यान
७ शीलवती
८ सावित्री चरित्र

काव्य ३

१ गीत गोविन्दानन्द (गाने के पद्य)
२ प्रेम माधुरी (शृङ्गार रस के कवित्त सवैया)
३ प्रेमफुलवारी (गाने के पद्य)
४ प्रेममालिका (तथैव)
५ प्रेमप्रलाप (तथैव)
६ प्रेमतरङ्ग (तथैव)

---

१ (नम्बर १९, २० बहुत कम लिखे गए)

२ (सुलोचना और सावित्री चरित्र में सन्देह है)

७ मधुमुकुल (तथैव)
८ होली (तथव)
९ मानलीला (तथैब)
१० दानलीला (तथव)
११ देवी छद्म लीला (तथैव)
१२ कार्तिक स्नान (तथव)
१३ विनय पचासा (तथैव)
१४ प्रेमाश्रुवषण (कवित्त सवया)
१५ प्रेम सरोवर (दोहे—अपूण)
१६ फूलो का गुच्छा (लावनी)
१७ जैन कुतूहल (गाने के पद्य)
१८ सतसई शृङ्गार (बिहारी के दोहो पर कुण्डलिया—अपूण)
१९ नए जमाने की मुकरी
२० विनोदिनी (बगला)
२१ वर्षाविनोद (गाने के पद्य)
२२ प्रात समीरन (बङ्ग छन्द)
२३ कृष्णचरित्र
२४ उरहना (गाने के पद्य)
२५ तन्मय लीला (गाने के पद्य)

---

३ (नम्बर १०, ११, १२, २०, २३, २५, २६, २७, २८, २९ यह सब बहुत छोटे काव्य हैं नम्बर १४, २२, २४ हरिश्चद्र कला के सम्पादक ने सङग्रह किया है।

२६ रानी छदम लीला (तथव)
२७ चित्र काव्य
२८ होली लीला

स्तोत्र ४

१ श्री सीतावल्लभ स्तोत्र (सस्कृत पद्य)
२ भीष्मस्तवराज
३ सर्वोत्तम स्तोत्र
४ प्रातस्मरण मङ्गल पाठ
५ स्वरूप चिंतन
६ प्रबोधिनी
७ श्रीनाथाष्टक

अनुवाद वा टीका ५

१ नारदसूत्र
२ भक्तिसूत्र वैजयन्ती
३ तदीय सवस्व
४ अष्टपदी का भाषार्थ
५ श्रुति रहस्य
६ कुरान शरीफ का अनुवाद (गद्य अपूर्ण)
७ श्री वल्लभाचाय कृत चतुश्श्लोकी

---

४ (यह सब छोटे छोटे काव्य है)
५ (नम्बर ४, ५, ७ बहुत ही छोटे हैं)

८ प्रेमसूत्र (अपूर्ण)

परिहास ६

१ पाचवें पैग़म्बर (गद्य)
२ स्वर्ग मे बिचार सभा का अधिवेशन (गद्य)
३ सबै जाति गोपाल की (गद्य)
४ बसन्त पूजा (गद्य)
५ वेश्या स्तोत्र (पद्य)
६ अग्रेज स्तोत्र (गद्य)
७ मदिरास्तवराज (गद्य पद्य)
८ कङ्कड स्तोत्र
९ बकरी विलाप (पद्य)
१० स्त्री दण्ड सग्रह (क़ानून ताजीरात शौहर उर्दू-गद्य)
११ परिहासिनी (गद्य)
१२ फूल बुझौवल (पद्य)
१३ मुशाइरा (गद्य-पद्य)
१४ स्त्री सेवा पद्धति (गद्य)
१५ रुद्री का भावार्थ (गद्य)
१६ उर्दू का स्यापा (पद्य)
१७ मेला झमेला (गद्य)
१८ बन्दर सभा (अपूर्ण)

धर्म सम्बन्धीय इतिहास तथा चिन्हादि वर्णन

१ भक्त सर्वस्व
२ वैष्णव सर्वस्व
३ वल्लभीय सर्वस्व
४ युगल सर्वस्व
५ पुराणोपक्रमणिका
६ उत्तरार्ध भक्तमाल
७ भारतवर्ष और वैष्णवता

माहात्म्य

१ गो महिमा (सग्रह-गद्य)
२ कार्तिक कर्म बिधि (गद्य)
३ कार्तिक नैमित्तिक कर्म विधि [गद्य]
४ वैशाख स्नान विधि [गद्य]
५ माघ स्नान बिधि [गद्य]
६ पुरुषोत्तम मास बिधि [गद्य]
७ मार्ग शीर्ष महिमा [पद्य]
८ उत्सवावली [गद्य]
९ श्रावण कृत्य [गद्य]

ऐतिहासिक ७

१ काश्मीर कुसुम
२ बादशाह दर्पण

---

६ (प्राय यह सभी छोटे छोटे लेख वा काव्य हैं)

७ (जीवन चरित्रो मे कई एक बहुत छोटे है)

३ महाराष्ट्र देश का इतिहास
४ उदयपुरोदय
५ बूँदी का राजवश
६ अग्रवालो की उत्पत्ति
७ खत्रियो की उत्पत्ति
८ पुरावृत्त सग्रह
९ पञ्च-पवित्रात्मा
१० रामायण का समय
११ श्री रामानुज स्वामी का जीवन चरित्र
१२ जयदेव जी का „
१३ सूरदास जी का „
१४ कालिदास का „
१५ विक्रम और विल्हण „
१६ काष्ठजिह्वास्वामी का जीवन चरित्र (अप्रकाशित)
१७ पडित राजा राम शास्त्री का जीवन चरित्र
१८ श्री शङ्कराचाय का जीवन चरित्र
१९ श्री बल्लभाचार्य जी का जीवन चरित्र
२० नेपोलियन का जीवन चरित्र
२१ जज द्वारकानाथ मित्र का जीवन चरित्र
२२ लार्ड म्यो का जीवन चरित्र
२३ लार्ड लारेन्स का जीवन चरित्र
२४ जार का सक्षिप्त जीवन चरित्र
२५ कालचक्र
२६ सीतावट निणय
२७ दिल्ली दर्बार दपण

राजभक्ति सूचक ८

१ भारत वीरत्व
२ भारत भिक्षा
३ मुँह दिखावनी
४ मानसोपायन [सग्रह]
५ मनो-मुकुल माला
६ लुइसा विवाह वणन]
७ राजकुमार-बिवाह वर्णन
८ विजयिनी विजय वैजयन्ती
९ सुमनोञ्जलि [सग्रह]
१० रिपनाष्टक
११ विजय वल्लरी
१२ जातीय सगीत National Anthem का अनुवाद
१३ राजकुमार सुस्वागतपत्र [गद्य]

स्फुट ग्रन्थ, लख तथा व्याख्यान आदि

१ नाटक [नाटक के भेद इतिहास आदि का वणन]

---

८ (नम्बर ३, ६, ७, ८, १२, १३ बहुत छोटे है)

२ हिन्दी भाषा
३ सङ्गीतसार
४ कृष्णपाक
५ हि दी व्याकरण
६ शिक्षा कमीशन मे साक्षी [अग्रेजी]
७ तहक़ीक़ात पुरी की तहक़ीक़ात
८ प्रशस्ति सग्रह
९ प्रतिमा पूजन विचार
१० रस रत्नाकर [असम्पूण]
११ व्याख्यान
१ खुशी २ हि दी [दोहो मे [३ भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है ?
१२ यात्रा
१ मेवाड यात्रा २ जनकपुर यात्रा ३ सरयूपार की यात्रा ४ वैद्यनाथ यात्रा
१३ ज्योतिष
१ भूगोल सम्बन्धी बातें २ भडरी ३ वषमालिका ४ मध्यान्ह सारिणी ५ मूक प्रश्न
१४ ऐतिहासिक
१ वृत्त सग्रह २ राजा जन्मेजय का दानपत्र ३ मङ्गलीश्वर का दानपत्र ४ मणिकर्णिका ५ काशी ६ पम्पासर का दानपत्र ७ कनौज ८ नागमङ्गला का दानपत्र ९ चित्रकूटस्थ रमाकुण्ड प्रशस्ति १० गोविन्ददेव जी के मन्दिर की प्रशस्ति ११ प्राचीन काल का सम्बत् निणय १२ शिवपुर का द्रोपदी कुण्ड
१५ प्रबन्ध
१ भ्रूणहत्या २ हॉ हम मूर्ति पूजक है [असम्पूण, अप्रकाशित] ३ दुजन चपेटिका ४ ईशूखृष्ट और ईशकृष्ण ५ शब्द मे प्रेरक शक्ति ६ भक्ति ज्ञानादिक से क्यो बडी है ? ७ पबलिक ओपीनियन ८ बङ्गभाषा की कविता ९ विनय पत्र १० कुरान दशन
१६ कौतुक
१ इन्द्रजाल २ चतुरङ्ग
१७ स्त्री शिक्षा के लेख
१ लाजवन्ती २ पतिव्रत ३ कुलबधू जनो की चितावनी ४ स्त्री ५ वर्षा ६ सती चरित्र [?] ७ राम सीता सम्बाद [?] ८ लवली और मालती सम्बाद [?] ९ बसन्त और कोकिला [?] १० सरस्वती और सुमति

का सम्बाद [?] ११ प्रेम-पथिक [?]

१८ छोटे छोटे लेख आदि

१ मित्रता २ अपव्यय ३ किसका शत्रु कौन है ? ४ भू-कम्प ५ नौकरो को शिक्षा ६ बुरी रीत ७ सूर्योदय ८ आ-शा ९ लाख लाख बात की एक एक बात १० बुद्धिमानो के अनुभूत सिद्धान्त ११ भग-वत् स्तुति १२ अङ्कमय जगत् वर्णन १३ ईश्वर के वर्तमान होने के विषय मे १४ इङ्ग-लैड और भारतवर्ष १५ वज्रा-घात से मृत्यु १६ त्यौहार १७ होली १८ वसन्त १९ लेवी प्राण लेवी २० मर्सिया

[कविवचनसुधा के लेख तथा स्फुट कविता का पूरा पता नही मिला। जिन लेखो पर [?] चिन्ह है उनमे सन्देह है कि इन-के लिखे है वा दूसरो के।]

सम्पादित, सग्रहीत वा उत्साह देकर बनवाए

१ ऊर्ध्वपुण्ड्र मार्तण्ड [सस्कृ-त]

२ कजली मलार सग्रह [काष्ठ जिह्वास्वामी कृत—]

३ चैती घाटो सग्रह [तथैव]

४ श्री सीताराम विवाह मङ्गल [तथैव]

५ मुकरी [काशिराज कृत]

६ सुन्दरी तिलक [सवैयो का सग्रह]

७ श्री राधा सुधा शतक [हठी कृत कवित्त]

८ सुजान शतक [घनआन-न्द जी कृत सवैया कवित्त सग्रह]

९ कवि-हृदय-सुधाकर [चन्द्रि-का मे छपा]

१० गुलजारे पुरबहार [गज-लो का सग्रह]

११ नईबहार [होली मे गाने के पद्य]

१२ चमनिस्ताने-हमेश बहार [चार भाग, नाना काव्य सग्रह]

१३ रसबरसात [वर्षा मे गाने के पद्य]

१४ कौशलेश कवितावली [चन्द्रि-का मे प्रकाशित]

१५ बुढवा मङ्गल [सस्कृत हि-न्दी मे परिहास]

१६ रामार्या [सस्कृत पद्य]

१७ जरासन्ध-बध महाकाव्य (पद्य)
१८ भागवत-शका-निरासवाद (सस्कृत पद्य)
१९ पञ्चक्रोशी के माग का विचार (गद्य)
२० मलारावली (पद्य)
२१ भारतीभूषण (पद्य)
२२ रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश (गद्य-पद्य)
२३ कविवचनसुधा (पावस की कविता सग्रह)
२४ कादम्बरी (गद्य उपन्यास)
२५ दुर्गेशनन्दिनी (गद्य उपन्यास)
२६ सरोजिनी (गद्य नाटक)
२७ आनरेरी मजिस्ट्रेटी के नियम (अग्रेजी)
२८ शृङ्गार सप्तशती (बिहारी के दोहो का सस्कृत अनुवाद)
२९ भग दभङ्ग (गद्य)
३० गदाधर भट्ट जी की वाणी (पद्य)
३१ रास-पञ्चाध्याई (पद्य)
३२ लालित्यलता (पद्य)
३३ श्री वल्लभ दिग्विजय (गद्य)
३४ साहित्य लहरी (गद्य पद्य)
३५ गजलियात (उर्दू पद्य)
३६ बसन्त होली (पद्य)
३७ भाषा व्याकरण (पद्य)
३८ पूण प्रकाश चन्द्रप्रभा (गद्य उपन्यास)
३९ राधारानी (गद्य उपन्यास)
४० राग सग्रह (पद्य)
४१ गुर सारणी (पद्य)
४२ होरी सगह (पद्य)
४३ प्रदोष मे त्रिदेव पूजन (गद्य)
४४ प्रान्तर प्रदशन (गद्य)
४५ कलिराज की सभा (गद्य)
४६ कीर्तिकेत नाटक (गद्य)
४७ मार्टिन वाल्डेक के भाग्य (गद्य)
४८ तप्ता सम्बरण नाटक (गद्य)
४९ गुण सिन्धु (गद्य)
५० अदभुत अपूव स्वप्न (गद्य)
५१ एक शोक सम्बाद (गद्य)
५२ बाल्य विवाह प्रहसन (गद्य)
५३ धैय सिन्धु (गद्य)
५४ प्रह्लाद नाटक (गद्य)
५५ रेल का बिकट खेल (गद्य)
५६ प्रसन्नकरुणाकर (सस्कृत)
५७ सुलभ रसायन सक्षेप
५८ धूत समागम प्रहसन (सस्कृत)
५९ ध्यान मञ्जरी (पद्य)
६० विद्या च द्रोदय (गद्य)
६१ भाषा गीत गोविन्द (पद्य)

६२ विजय पारिजात महानाटक (सस्कृत)
६३ श्री वृन्दाबन सत (ध्रुवदास कृत)
६४ गुरुकीर्ति कवितावली (पद्य)
६५ ग्राम पाठशाला नाटक (गद्य)
६६ मालती (गद्य)
६७ बिजुली (गद्य)
६८ शास्त्र परिचायिका (गद्य)
६९ शिशुपालन (गद्य)
७० श्री बदरिकाश्रम यात्रा (सस्कृत)
७१ माधुरी (रूपक गद्य)
७२ ज्योतिर्विदद्या (गद्य)
७३ शरद ऋतु की कहानी (गद्य)
७४ प्रेम पद्धति (घनआनन्द कृत, पद्य)
७५ प्रेम दशन (देव कृत, पद्य)

(जो जो ग्रन्थ स्मरण आए या उत्तम लेख चन्द्रिका, बाला-बोधिनी मे मिले लिखे गए हैं कविवचनसुधा मे प्रकाशित ग्रंथ या लेखो का पता नही मिला)
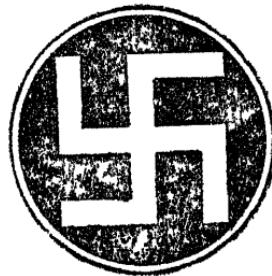
चन्द्रास्त

अर्थात्

श्रीमान कविशिरोमणि भारतभूषण भारतेन्दु
श्री हरिश्चन्द्र का सत्यलोक गमन।

अद्य निराधाराऽभूद्दिवगते श्री हरिश्चन्द्रे।
भारतधरा विशेषादभाग्यरूपा महोदयाग्रेन्द्रे॥

अतिशय दु खित
व्यास रामशङ्कर शर्म्मा लिखित

अमीरसिंह द्वारा बनारस हरिप्रकाश यन्त्रालय मे मुद्रित हुआ

१८८५
बिना मूल्य बँटता है

अनर्थ ! अनर्थ !! अनर्थ !!!

सबसे अधिक अनर्थ

"दीन जानि सब दीन्ह एक दुरायो दुसह दुख ।
सो दुख हम कहँ दीन्ह कछुह न राख्यो बीरवर ।।"

आज हमको इसके प्रकाशित करने मे अत्यन्त शोक होता है और कलेजा मुँह को आता है कि हम लोगो के प्रेमास्पद भारत के सच्चे हितषी, और आर्य्यों के शुभचिन्तक श्रीमान् भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी कल मङगल की अमङगल रात्रि मे ६ बज के ४५ मिनट पर इस अनित्य ससार से विरक्त हो और हम लोगो को छोड कर परम पद को प्राप्त हुए ० उनकी इस अकाल मृत्यु से जो असीम दु ख हुआ उसे हम किसी भाति से प्रकट नहीं कर सकते क्योकि यह वह दुसह दु ख है कि जिनके वणन करने से हमारी छाती तो फटती ही है वरन्च लेखनी का हृदय भी विदीण होता जाता हे और वह सहस्रधारा से अश्रुपात करती है ०

हा ! जिस प्राण प्यारे हरिश्चन्द्र के साथ सदा विहार करते थे और जिसके चन्द्रमुख दशन मात्र से हृदय कुमुद विकशित होता था उसे आज हम लोग देखने के लिये भी तरसते हैं ० जिसके भरोसे पर हम लोग निश्चिन्त बैठे रहते थे और पूरा विश्वास रखते थे वही आज हमको धोखा दे गया ० हा ! जिस हरिश्चन्द्र को हम अपना समझते थे उसको हमारी सुध तक न रही ० हरिश्चन्द्र तुम तो बडे कोमल स्वभाव के थे परन्तु इस समय तुम इतने कठोर क्यो हो गये ? तुमको तो राह चलते भी किसी का रोना अच्छा नहीं लगता था सो अब सारे भारतवर्ष का रोना कैसे सह सकोगे ० प्यारे ! कहो तो सही, दया जो सदा छाया सी तुम्हारे साथ रही सो इस समय कहाँ गई ० प्रेम जो तुम्हारा एक मात्र व्रत था उसे इस वेला कहाँ रख छोडा है जो तुम्हारे सच्चे प्रेमी बिलला रहे है हे देशाभिमानी हरिश्चन्द्र ! तुम्हारा देशाभिमान किधर गया जो तुम अपने देश की पूरी उन्नति किये विना इसे अनाथ छोड कर चल दिये ० तुम्हारा हिन्दी का आग्रह क्या हुआ, अभी तो वह दिन भी नहीं आये थे जो हिन्दी का भली भाँति प्रचार हो गया

होता, फिर आप को इतनी जल्दी क्या थी जो इसका हाथ ऐसी अधूरी अवस्था मे छोडा हे परमेश्वर, तूने आज क्या किया, तेरे यहाँ कमी क्या थी जो तूने हमारी महानिधि छीन ली ० जो कहो कि वह तुम्हारे भक्त थे तो क्या न्याय यही है कि अपने सुख के लिये भक्त के भक्तो को दुख दो ० अरे मौत निगोडी, तुझे मौत भी न आई जो मेरे प्यारे का प्राण छोडती ० अरे दुर्दैव क्या तेरा पराक्रम यही था जो हतभाग्य भारत को यह दिन दिखलाया ० हाय ! आज हमारे भारतवष का सौभाग्यसूर्य अस्त हो गया, काशी का मानस्तथ टूट गया और हिन्दुओ का वन जाता रहा ० यह एक ऐसा आकस्मिक वज्रपात हुआ कि जिस के आघात से सब का हृदय चूण हो गया ० हा ! अब ऐसा कौन है जो अपने बन्धुओ को अपने देश की भलाई करने की राह बतलावैगा और तन मन धन से उनमे समति और अच्छे उपदेशो के फैलाने का यत्न करैगा ० अभागिनी हिन्दी के भण्डार को अपने उत्तमोत्तम लेख द्वारा कौन पुष्ट करेगा और साधारण लोगो मे विद्या की रुचि बढाने के लिये नाना प्रकार के सामयिक लेख लिख कर सब का उत्साह कौन बढावेगा ० अपनी सुधामयी वाणी से हम लोगो की आवेलि कौन बढावैगा और हा ! काव्यामृत पान करा के हमारी आत्मा को कौन तुष्ट करेगा ० मेरे प्राणप्यारे ! अवसर पडने पर हमारे आयधम की रक्षा करने के लिये कौन आगे होगा और दीनोद्धार की श्रद्धा किसको होगी ० यो तो आय जाति को अब कोई सकष्ट उपस्थित होता था तो वे तुम्हारे समीप दौडे जाते थे पर अब किसकी शरण जायेंगे ० शोक का विषय है कि तुमने इनमे से एक पर भी ध्यान न दिया और हम लोगो को निरवलम्ब छोड गये ० प्रियतम हरिश्चन्द्र ! आज तुम्हारे न रहने ही से काशी मे उदासी छा रही है और सब लोगो का अन्त करण परम दु खित हो रहा हे ० तुम को वह मोहन मत्र याद था कि जिस से सारे ससार को अपने वश मे कर लिया था ० पर हा ! आज एक तुम्हारे चले जाने से सारा भारतवष ही नहीं, किन्तु यूरोप अमेरिका इत्यादि के लोग भी शोकग्रस्त होगे यद्यपि तुम कहने को इस ससार मे नही हो, परन्तु तुम्हारी वह अक्षय कीर्ति हे कि जो इस ससार मे उस समय तक बनी रहेगी कि जबलो हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरो का लोप होगा ० प्यारे ! तुम तो वहाँ भी ऐसे ही आदर को प्राप्त होग पर बिला मोत हम लोग मारे गये ० अस्तु परमेश्वर की जो इच्छा आप की आत्मा को सुख तथा अखण्ड स्वर्गवास हो, पर देखना अपने दीन मित्र तथा गरीब भारतवष को

भूलना मत ० अब सिवा इसके रह क्या गया है कि हम लोग उनके उपकारो को याद करके आँसू बहावै, इसलिये यहाँ पर आज थोडा सा उनका चरित प्रकाशित करता हूँ, चित्त स्वस्थ होने पर पूरा जीवनचरित छापूगा क्योकि वह स्वय भविष्य-वाणी कर गये है कि

कहैंगे सबही नैन नीर भरि २ पाछै
प्यारे हरिचन्द की कहानी रह जायगी ०

मानमन्दिर,
७-१-८५

प्यारे के वियोग से निता त दु खी
व्यास रामशकर शर्मा

संक्षिप्त जीवनी

श्रीमान कविचूडामणि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने सन् १८५० ई० के सितम्बर मास की ९वी तारीख को जन्मग्रहण किया था। जब वह ५ वष के थे तो उनकी पूज्य माता जी वो ९ वर्ष के हुए तो महामान्य पिता जी का स्वगवास हुआ, जिसमे उन को माता पिता का सुख बहुत ही कम देखने मे आया, उनकी शिक्षा बालकपन से दी गई थी और उन्होने कई वष लो कालेज मे अग्रेजी तथा हिन्दी पढी थी सस्कृत, फारसी, बगला, महाराष्ट्री इत्यादि अनेक भाषाओ मे बाबू साहिब ने घरपर निज परिश्रम किया था। इस समय बाबू साहिब तैलडग तथा तामील भाषा को छोड कर भारत की सब देश भाषा के पण्डित थे। बाबू साहिब की विद्वत्ता, बहुज्ञता, मीतिज्ञता, पाण्डित्य, तथा चमत्कारिणी बुद्धि का हाल सब पर विदित हे कहने की कोई आवश्यकता नही। इनकी बुद्धि का चमत्कार देख कर लोगो को आश्चर्य होता था कि इतनी अल्प अवस्था मे यह सवज्ञता। कविता की रुचि बाबू साहिब को बाल्यावस्था ही से थी, उनकी उस समय की कविता पढने से कि जब वह बहुत छोटे थे बडा आश्चय होता है और इस समय की तो कहना ही क्या है मूर्तिमान आशुकवि कालिदास थे जैसी कविता इनकी सरस और प्रिय होती थी वसी आज दिन किसी की नहीं होती। कविता सब भाषा की करते थे, पर भाषा की कविता मे अद्वितीय थे। उनके जीवन का बहुमूल्य समय सदा लिखने पढने मे जाता था। कोई काल ऐसा नहीं था कि उनके पास कलम, दावात और कागज न रहता रहा हो। १६ वष की अवस्था मे कविवचन-सुधा पत्र निकाला था जो आज तक चला जाता हे। इसके उपरान्त तो क्रमश अनेक पत्र पत्रिकाएँ और सैकडो पुस्तक लिख डाले जो युग युगान्तर तक ससार मे उनका नाम जैसा का तैसा बनाये रखेगें। २० वष की अवस्था अर्थात् सन् ७० मे बाबू साहिब आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए और सन ७४ तक रहे वो उसी के लगभग ६ वर्ष लो म्यूनिस्पल कमिश्नर भी थे। साधारण लोगो मे विद्या फैलाने के लिये सन् १८६७ ई० मे जब कि बाबू साहिब की अवस्था केवल १७ वर्ष की थी चौखम्भा स्कूल जो अबतक उनकी कीर्ति की ध्वजा है, स्थापित किया,

जिसके छात्र आज दिन एम० ए० बी० ए० तथा बडी २ तनखाह के नौकर हैं। लोगो के सस्कार सुधारने तथा हिन्दी की उन्नति के लिये हिन्दी डिबेटिंग क्लब, अनाथरक्षिणी तदीय समाज, काव्य समाज इत्यादि सभाएँ सस्थापित की और उनके सभापति रहे, भारतवष के प्राय सब प्रतिष्ठित समाज तथा सभाओ मे से किसी के प्रेसीडेन्ट, सेक्रिटरी और किसी के मेम्बर रहे लोगो के उपकाराथ अनेक बार देश देशान्तरो मे व्याख्यान दिये। उनकी वक्तृता सरस और सारग्राहिणी होती थी। उनके लेख तथा वक्तृत्व देशगौरव झलकता था। विद्या का सम्मान, जैसा बाबू साहिब करते थे वसा करना आजकल कठिन है, ऐसा कोई भी विद्वान न होगा जिसने इनसे आदर सत्कार न पाया हो। यहाँ के पण्डितो ने जो अपना २ हस्ताक्षर करके बाबू साहिब को प्रशसापत्र दिया था उसमे उन लोगो ने स्पष्ट लिखा है कि—

सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द।
जिमि सुभाव दिन रैन के कारन नित हरिचन्द॥

बाबू साहिब दानियो मे कण थे, इतना ही कहना बहुत है। उनसे हजारो मनुष्य का कल्याण होता रहा। विद्योन्नति के लिये भी उन्हो ने बहुत व्यय किया। ५०० रु० तो उन्होने प० परमानन्द जी की शतसई की सस्कृत टीका का दिया था और इसी प्रकार से कालिज, वो स्कूलो मे उचित पारितोषिक बाटे है। जब २ बगाल, बम्बई, वो मदरास मे स्त्रियाँ परिक्षोत्तीण हुई है तब २ बाबू साहिब ने उनके उत्साह बढाने के लिये बनारसी साडिया भेजी थीं। जिनमे से कई एक को श्रीमती लेडी रिपन ने प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथ से बाटा था। बाबू साहिब ने देशोपकार के लिये नेशनल फड होमियोपैथिक डिस्पेंसरी, गुजरात वो जौनपुर रिलीफ फण्ड, सेलज होम, प्रिंस आव् वेलस हास्पिटल और लैब्रेरी इत्यादि की सहायता मे समय समय पर चन्दा दिये हे। गरीब दुखियो की बराबर सहायता करते रहे।

गुणग्राहक भी एक ही थे, गुणियो के गुण से प्रसन्न होकर उनको यथेष्ट द्रव्य देते थे, तात्पर्य यह कि जहा तक बना दिया देने से हाथ नहीं रोका।

देशहितैषियो मे पहिले इन्हीं के नाम पर अगुली पडती है क्योकि यह वह हितैषी थे कि जिन्होने अपने देशगौरव के स्थापित रखने के लिये अपना धन, मान, प्रतिष्ठा एक ओर रख दी थी और सदा उसके सुधरने का उपाय सोचते रहे।

उनको अपने देशवासियो पर कितनी प्रीति थी यह बात उनके भारतजननी, वो भारतदुर्दशा इत्यादि ग्रन्थो के पढने ही से विदित हो सकती है । उनके लेखो से उनकी हितैषिता और देश का सच्चा प्रेम झलकता था ।

यद्यपि बहुत लोगो ने उनको गवर्मेन्ट का डिसलायल (अशुभचिन्तक) मान रक्खा था, पर यह उनका भ्रम था, हम मुक्तकण्ठ से कह सकते है कि वह परम राजभक्त थे । यदि ऐसा न होता तो उन्हें क्या पडी थी कि जब प्रिंस आव् वेल्स आये थे तो वह बडा उत्सव और अनेक भाषा के छन्दो मे बना कर स्वागत ग्रन्थ (मानसोपायन) उनके अपण करते । ड्यूक आव एडिम्बरा जिस समय यहा पधारे थे बाबू साहिब ने उनके साथ उस समय वह राजभक्ति प्रकट की जिससे ड्यूक उन पर ऐसे प्रसन्न हुए कि जब तक काशी मे रहे उन पर विशेष स्नेह रक्खा । सुमनोन्जलि उनके अपण किया था जिसके प्रति अक्षर से अनुराग टपकता है । महाराणी की प्रशसा मे मनोनुकूल माला बनाई । मिस्र युद्ध के विजय पर प्रकाश्य सभा की, वो विजयिनीविजय बैजयती बनाकर पूण अनुराग सहित भक्ति प्रकाशित की । महाराणी के बचने पर सन ८२ मे चौकाघाट के बगीचे मे भारी उत्सव किया था और महाराणी के जन्म दिवस तथा राजराजेश्वरी की उपाधि लेने के दिन प्राय बाबू साहिब उत्सव करते रहे । ड्यूक आव् अलबनी की अकाल मृत्यु पर सभा कर के महाशोक किया था । जब २ देशहितषी लाड रिपन आये उन को स्वागत कविता देकर आनन्दित हुए । सन् ७२ मे म्यो मेमोरियल सिरीज मे १५०० रु० दिये । यह सब लायल्टी नहीं तो क्या है ?

बाबू साहिब भारतवष के एडच्यूकेशन कमीशन (विद्या सभा) के मभ्य तो हुए ही थे परन्तु इन का गुण वह था कि वलायत मे जो नेशनल एथम (जातीय गीत) के भारत की सब भाषाओ मे अनुवाद करने के लिये महारानी की ओर से एक कमेटी हुई थी उसके मेम्बर भी थे, और उनके सेक्रेटरी ने जो पत्र लिखा था उसमे उसने बाबू साहिब की प्रशसा लिख कर स्पष्ट लिखा था कि मुझको विश्वास है कि आप की कविता सबसे उत्तम होगी और अन्त मे ऐसा ही हुआ क्यो नहीं जब की भारती जिह्वा पर थी । सच पूँछिए तो कविता का महत्व उन्हीं के साथ था । बाबू साहिब की विद्वत्ता और बहुज्ञता की प्रशसा केवल भारतीय पत्रो ने नहीं की वरन्च विलायत के प्रसिद्ध पत्र ओवरलेण्ड, इण्डियन और होम मेल्स इत्यादिक अनेक पत्रो ने की है । उनकी बहुदर्शिता के विषय मे एशियाटिक सोसाइटी के

प्रधान डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, एम० ए० शेरिंग, श्रीमान पण्डितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभति महाशयो ने अपने २ ग्र थो मे बडी प्रशसा की है। श्रीयुत विद्यासागर जी ने अपने अभिज्ञान शाकु तल की भूमिका मे बाब् साहिब को परम अमायिक, देशबन्धु धार्मिक, और सुहृद इत्यादि कर के बहुत कुछ लिखा है। बाबू साहिब अजातशत्रु थे इसमे लेश मात्र भी सन्देह नहीं और उनका शील ऐसा अपूव था कि साधारणो की क्या कथा भारतवष के प्रधान २ राजे, महाराजे, नवाब और शहजादे इन से मित्रता का बर्ताव बरतते थे और अमेरिका वो यूरोप के सहृदय प्रधान लोग भी इन पर पूरा स्नेह रखते थे। हा ! जिस समय ये लोग यह अनथकारी घोर सम्वाद सुनेंगे उनको कितना कष्ट होगा।

बाबू साहिब को अपने देश के कल्याण का सदा ध्यान रहा करता था। उन्होंने गोबध उठा देने के लिये दिल्ली दरबार के समय ६०००० हस्ताक्षर करा के लाड लिटन के पास भेजा था। हिन्दी के लिये सदा जोर देते गये और अपनी एज्यूकेशन कमीशन की साक्षी मे यहा तक जोर दिया कि लोग फडक उठते हैं। अपने लेख तथा काव्य से लोगो को उन्नति के अखाडे मे आने के लिये सदा यत्नवान रहे। साधारण की ममता इनमे इतनी थी कि माधोराव के धरहरे पर लोहे के छड लगवा दिये कि जिससे गिरने का भय छूट गया। इनकमटक्स के समय जब लाट साहिब यहा आये थे तो दीपदान की वेला दो नावो पर एक पर और दूसरी पर स्वागत स्वागत धन्य प्रभु श्री सर विलियम म्योर। टेक्स छुडाव्हु सबन को विनय करत कर जोर ॥ लिखा था इसके उपरान्त टिकस उठ गया लोग कहते हैं कि इसी से उठा। चाहे जो हो इसमे सन्देह नहीं कि वह अन्त तक देश के लिये हाय २ करते रहे।

सन् १८८० ई० के २० सितम्बर के सारसुधानिधि पत्र मे हमने बाबू साहिब को भारतेन्दु की पदवी देने के लिये एक प्रस्ताव छपवाया था और उसक छप जाने पर भारतवष के हिन्दी समाचारपत्रो ने उसपर अपनी सम्मति प्रकट की और सब पत्र के सम्पादक तथा गुणग्राही विद्वान् लोगो ने मिल कर उनको भारतेन्दु की पदवी दी, तबसे वह भारतेन्दु लिखे जाते थे।

बाबू साहिब का धम्म वैष्णव था। श्रीवल्लभीय वह धम के बडे पक्के थे, पर आडम्बर से दूर रहते थे। उनके सिद्धान्त मे परम धर्म्म भगवत्प्रेम था। मत वा धम्म विश्वासमूलक मानते थे प्रमाण मूलक नही। सत्य, अहिसा, दया,

शील, नम्रता आदि चारित्र को भी धम मानते थे, वह सब जगत को ब्रह्ममय और सत्य मानते थे।

बाबू साहिब ने बहुत सा द्रव्य व्यय किया, परन्तु कुछ शोच न था। कदाचित शोच होता भी था तो दो अवसर पर, एक जब किसी निज आश्रित को या किसी शुद्ध सज्जन को बिना द्रव्य कष्ट पाते देखते थे, दूसरे जब कोई छोटे मोटे काम देशोपकारी द्रव्याभाव से रुक जाते थे।

हा। जिस समय हमको बाबू साहिब की यह करुणा की बात याद आ जाती हे तो प्राण कठ मे आता है। वह प्राय कहते थे कि अभी तक मेरे पास पूववन बहुत धन होता तो म चार काम करता। (१) श्रीठाकुर जी को बगीचे मे पधराकर धूम धाम से षटऋतु का मनोरथ करता (२) विलायत, फरासीस और अमेरिका जाता (३) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की यूनिवर्सिटी स्थापन करता (हाय रे! हतभागिनी हिन्दी, अब तेरा इतना ध्यान किसको रहेगा) (४) एक शिल्प कला का पश्चिमोत्तर देश मे कालिज करता।

हाय! क्या आज दिन उन के बडे २ धनिक मित्रो मे से कोई भी मित्र का दम भरने वाला ऐसा सच्चा मित्र हे जो उनके इन मनोरथो मे से एक को भी उनके नाम पर पूरा करके उनकी आत्मा को सुखी करे! हायरे! हतभाग्य पश्चिमोत्तर देश, तेरा इतना भारी सहायक उठ गया, अब भी तुझसे उनके लिये कुछ बन पडेगा या नही? जब कि बगाल और बम्बई प्रदेश मे साधारण हितैषियो के स्मारक चिह्न के लिये लाखो बात की बात मे इकटठे हो जाते हैं।

बाबू साहिब के खास पसन्द की चीजें राग, वाद्य, रसिक समागम, चित्र, देश २ और काल २ की विचित्र वस्तु और भाति २ की पुस्तक थीं।

काव्य उनको जयदेव जी, देव कवि, श्री नागरीदास जी, श्री सूरदास जी, और आनन्दघन जी का अति प्रिय था। उर्द मे नजीर और अनीस का। अनीस को अच्छा कवि समझते थे।

सन्तति बाबू साहिब को तीन हुई। दो पुत्र एक कन्या पुत्र दोनो जाते रहे, कन्या है, विवाह हो गया।

बाबू साहिब कई बार बीमार हुए थे, पर भाग्य अच्छे थे इसलिये अच्छे होते गये। सन् १८८२ ई० मे जब श्रीमन्महाराणा साहिब उदयपुर से मिलकर जाडे

के दिनो मे लौटे तो आते समय रास्ते ही मे बीमार पडे। बनारस पहुँचने के साथ ही श्वास रोग से पीडित हुए। रोग दिन २ अधिक होता गया महीनो मे शरीर अच्छा हुआ। लोगो ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। यद्यपि देखने मे कुछ रोज तक रोग मालूम न पडा पर भीतर रोग बना रहा और जड से नहीं गया। बीच मे दो एक बार उभड आया, पर शान्त हो गया था, इधर दो महीने से फिर श्वास चलता था, कभी २ ज्वर का आवेश भी हो जाता था। औषधि होती रही शरीर कृशित तो हो चला था पर ऐसा न ही था कि जिससे किसी काम मे हानि होती, श्वास अधिक हो चला क्षयी के चिह्न पैदा हुए। एका एक दूसरी जनवरी से बीमारी बढने लगी, दवा, इलाज सब कुछ होता था पर रोग बढता ही जाता था ६वी तारीख को प्रात काल के समय जब ऊपर से हाल पूछने के लिये मजदूरिन आई तो आप ने कहा कि जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया २ छप रहा है, पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खासी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है। उसी दिन दोपहर से श्वास वेग से आने लगा कफ मे रुधिर आ गया, डाक्टर वद्य अनेक मोजूद थे और ओषधि भी परामर्श के साथ करते थे परन्तु मज बढता ही गया ज्यो २ दवा की। प्रतिक्षण मे बाबू साहिब डाक्टर और वद्यो से नींद आने और कफ के दूर होने की प्राथना करते थे, पर करे क्या काल दुष्ट तो सिर पर खडा था, कोई जाने क्या, अन्ततोगत्वा बात करते ही करते पावे १–बजे रात को भयकर दृश्य आ उपस्थित हुआ। अन्त तक श्रीकृष्ण का ध्यान बना रहा। देहावसान समय मे श्रीकृष्ण। श्रीराधाकृष्ण। हे राम। आते हैं मुख देख लाओ कहा और कोई दोहा पढा जिसमे से श्रीकृष्ण सहित स्वामिनी इतना धीरे स्वर से स्पष्ट सुनाई दिया। देखते ही देखते प्यारे हरिश्चन्द्र जी हम लोगो की आखो से दूर हुए। चन्द्रमुख कुम्हिला कर चारो ओर अन्धकार हो गया। सारे घर मे मातम छा गया, गली २ मे हाहाकार मचा, और सब काशीवासियो का कलेजा फटने लगा। लेखनी अब आगे नही बढती बाबू साहिब चरणपादुका पर

हा! काल की गति भी क्या ही कुटिल होती है, अचान्चक कालनिद्रा ने भारतेन्दु को अपने वश मे कर लिया कि जिससे सब जहा के तहा पाहन से खडे रह गये। वाह रे दुष्ट काल! तूने इतना समय भी न दिया जो बाबू साहिब अपने परम प्रिय अनुज बाबू गोकुलचन्द्र जी वो बाबू राधाकृष्णदास तथा अन्य

आत्मीयो से एक बार अपने मन की बात भी कहने पाते और हमको, जिसे उस समय यह भयकर दृश्य देखना पडा था, इतना अवसर भी न मिला कि अतिम सम्भाषण कर लेते हा ! हम अपने इस कलक को कसे दूर कर। वह मोहनी मूर्ति भुलाये से नही भूलती पर करैं क्या। बाबू साहिब की अवस्था कुल ३४ वष ३ महीने २७ दिन १७ घ० ७ मि० और ४८ से० की थी। पर निदयी काल से कुछ वश नही।